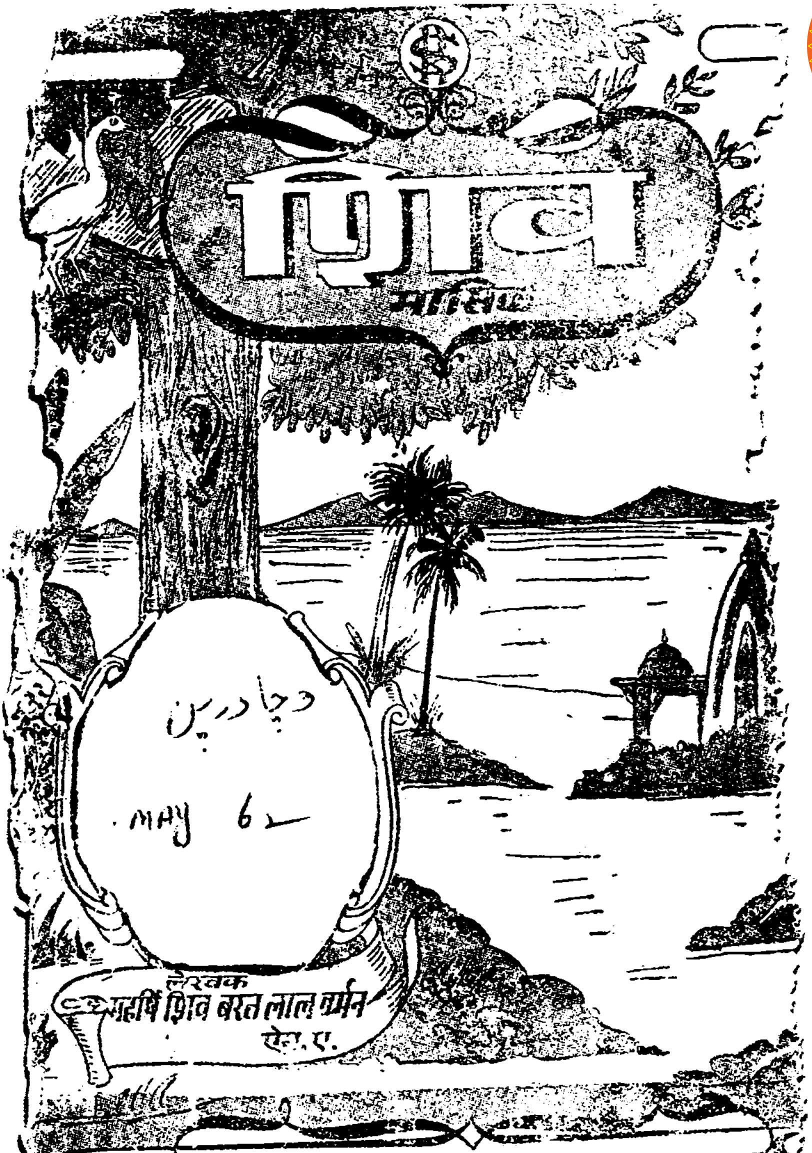

प्रकाशक

शिव साहित्य प्रकाशन मं.

पो. दयाल नगर, जिला अलीगढ़ उ.प्र.

संतों के अनुभव पूर्ण वचनों से परिपूर्ण
कर्म, भक्ति, ज्ञान तथा योग सम्बन्धी
उच्चकोटि का मासिक पत्र

"शिव"

सब धर्म और सम्प्रदाय वालों के पढ़ने, मनन करने और अमल करने के लिए उपयुक्त सामिग्री प्रतिमास पुस्तक रूप में भेंट करता है अवश्य मंगाइये। मू॰ केवल ६) प्रति वर्ष पता—शिव साहित्य प्रकाशन मंडल, पोस्ट, दयाल नगर अलीगढ़।

महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज के वचनों को उर्दू में प्रकाशित करने वाला एक मात्र पत्र 'दयाल' केशवगिरी, हैदराबाद से प्रकाशित होता है मूल्य ६।) रु० सालाना। ग्राहक बनकर अवश्य लाभ उठाइये।

"मनुष्य बनो" पत्रिका में अनुभवपूर्ण सन्तों के वचन प्रतिमास प्रकाशित होते हैं। बड़ी उच्चकोटि की पत्रिका है मूल्य केवल ३) रु० सालाना। पता—मनुष्य बनो कार्यालय (दयाल कम्पाउन्ड, पेच जामाजी) वाटर वर्क्स रोड अलीगढ़।

प्रत्येक साइज के सन्तों के चित्र श्यामराव ८३४ नन्द कुटिया लाल टीकरी, नाम पल्ली, हैदराबाद (दक्षिण) के यहाँ से मंगाइये।

विचार दर्पण

(महर्षि शिवब्रतलाल जी महाराज के
'आइनाये ख्याल' उर्दू पुस्तक का अनुवाद)

—:o:—

सम्पादक—

नन्दू भाई

निज़ामाबाद (दक्षिण)

—:o:—

अ० सहायक सम्पादक

देवीचरन मीतल

खेवराजनगर, अलीगढ़

प्रकाशक—

नन्दू भाई प्रधान

शिव साहित्य प्रकाशन मंडल,

पो० दयाल नगर, अलीगढ़।

प्रथम वार सं० शाका १८८४	सर्वाधिकार सुरक्षित	मूल्य १) प्रति

विषय सूची

सं०	विषय	पृष्ठ
१	प्रार्थना	३
२	प्रस्तावना	४
३	विचार की एकाग्रता	५
४	सर्व व्यापक सिद्धान्त की समझ की कुंजी	१५
५	आदर्श पुरुषों के जीवन और उनका निश्चित प्रभाव	१०
६	मुझमें शक्ति है, मैं शक्ति का प्राकट्य हूं मैं स्वयं शक्ति हूँ	३१
७	खुशी और सुख	४१
८	महा लिंग	४७
९	मन्त्रों का प्रभाव	५३
१०	अत्यन्त सच्ची बातें	६०
११	केवल अपना अवगुण देखो, दूसरों का अवगुण न देखो	६६

निवेदन

जिन सज्जनों ने अभी तक 'शिव' का वर्षिक मूल्य न भेजा हो अथवा जिन पर पिछला बकाया है वह तुरन्त मनीआर्डर द्वारा भेजने की कृपा करें।

मैनेजर

—०:०—

R. S.

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात् परब्रह्म तस्मैः श्री गुरुवेनमः॥

शिव

वर्ष ८ | शाका सं० १८८४ मई सन् १९६२ | तरङ्ग ३

चेतावनी

सोच समझ अभिमानी, चादर भई है पुरानी ।।टेक।।
टुकड़े टुकड़े जोड़ जुगत सों, सो के अंग लपटानी ।
कर डाली मैली पापन सों, लोभ मोह में सानी ।।
ना यहि लगो ज्ञान के साबुन, ना धोई मल पानी ।
सारी उमरि ओढ़ते बीती, भली बुरी नहिं जानी ।।
संका मान जान जिय अपने, यह है चीज बिरानी ।
कहत कबीर धर राख जतन से, फेर हाथ नहिं आनी ।।

प्रस्तावना

यह पुस्तक उर्दू में 'आइनाये ख्याल' के नाम से अप्रैल १९१० में प्रकाशित हुई थी। इसका उद्देश्य केवल विचार कोउभरना है। लोग न केवल असलियत का परिचय प्राप्त करें किन्तु यह कि उनका जीवन एक विशेष प्रकार के क्रियात्मक सांचे में ढलता चला जाय। चूंकि आज के युग में भौतिक उन्नति तो चरम सीमा पर पहुँच रही है परन्तु मानसिक उन्नति की ओर अभी लोगों का ध्यान कमतर है। विचार की शक्ति का अनुभव न होने से एक प्रकार से वास्तविक उन्नति नहीं हो रही और आत्म ज्ञान की ओर भी ध्यान नहीं जारहा है।

इस लिये वर्तमान समय की आवश्यकता को देखकर इस पुस्तक को जनता की भेंट किया जा रहा है। महर्षि जी महाराज की इस विषय पर और भी कई पुस्तकें हैं। यदि जनता ने इसका स्वागत किया तो और पुस्तकें भी प्रकाशित की जायगी।

देवीचरन मीतल
म० सम्पादक

R. S.

विचार दर्पण

विचार की एकाग्रता

हर प्रकार की उन्नति के मार्ग में विचार की एकाग्रता प्रथम, मध्य का और अन्तिम पग है। जब मनुष्य एक सीमा तक इस सिद्धान्त को क्रियात्मक रूप से समझ लेता है उसको न केवल हर प्रकार की साँसारिक उन्नति प्राप्त करने का अधिकार मिल जाता है किन्तु वह अपने क्रियात्मक ढंग (तर्जे अमल) और एकाग्र चित्त से पाप, रोग और मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लेता है।

संसार की मनुष्य जाति के व्यक्तिगत, सामाजिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति में भिन्नता का कारण क्या है? "केवल विचार की एकाग्रता का भेद"।

ब्राह्मणों ने जप,तप और अध्यात्म के हेतु विचार को एकाग्र किया। उनमें उच्च बुद्धि वाले और मन को वश में करने वाले पुरुष अधिक उत्पन्न हो गये। क्षत्रियों ने बल, शक्ति, वीरता और साहस के लिये विचार को एकाग्र किया, अत: उन में वीर, उच्च साहसी और आत्मिक बल वाले मनुष्य उत्पन्न हुये। प्राचीनकाल की जीविका उपार्जन की व्यवस्था और जाति पाँति के इंस्टीट्यूशनों ने बहुत से लाभदायक परिणाम उत्पन्न किये। आज कल की भाँति वह समाज में कंठ के अप्रिय हार नहीं थे। जनता दीर्घ काल तक रावण के अत्याचार से छुटकारा पाने के लिये एक नेता की प्रतीक्षा में अपने विचार

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

को एकाग्र करती रही। अतः भगवान् श्री रामचन्द्र प्रकट हुये। कंस बहुत समय तक जनता को नष्ट भ्रष्ट करता रहा। पृथ्वी-माता एक ऐसे शक्तिशाली पुनीत पुरुष की सहायता के लिये त्राहि त्राहि कर रही थी और विचार को एकाग्र कर रही थी जो उसके बोझ को उठा कर फैंक दे। अतः श्री कृष्ण चन्द्र आनन्दकंद प्रकट हुये। समाज फिर बड़ी दुर्दशा में फंसकर छिन्न भिन्न हो गया। संसार में मांस भक्षण और दुराचार का दौर दौरा था। समाज ने एक ऐसे पवित्र आध्यात्मिक शिक्षक के हेतु अपने विचार को एकाग्र किया जो उसका सुधार कर सके। परिणाम यह हुआ कि एक सर्वांग सदाचारी, उपकारी और आध्यात्मिक नेता बन कर भगवान बुद्ध ने जन्म लिया और संसार में परिवर्तन कर दिया और आर्यावर्त के इतिहास का पन्ना उलट गया। सभ्यता और संस्कृति ने एक ऐसा अद्भुत गौरव प्राप्त किया जिस की मिसाल वर्तमान उन्नतिशील काल में देखने में नहीं आती।

इसी प्रकार जब मुसलमानों के राज्यकाल में सभ्यता और धर्म पर आक्रमण होने लगे और वह हिन्दू जिन्होंने आर्य धर्म छोड़ कर मुसलिम धर्म धारण कर लिया था विशेषकर हिन्दुओं को सताने लगे, जनता का विचार एक ऐसे रक्षक की ओर एकाग्र हुआ जो उसको कष्ट कारक दुर्दशा से छुटकारा दिलाये। परिणाम यह हुआ कि पूर्व में परम सन्त कबीर साहब और उत्तर पश्चिम में आदरणीय गुरु नानक साहब ने अध्यात्म का एक अत्यन्त दर्शनीय चबूतरा (प्लेट फार्म) बना दिया जिस पर सब लोग बिना किसी भेदभाव के मिलजुल कर संगठित होकर बैठ सकें। नव मुसलिम हिन्दू घबड़ाये। उन्होंने समझा था कि उनके पूर्वजों के धर्म में एकता के भाव की शिक्षा के लिये कोई स्थान नहीं था। अतः वह बाढ़ जो हिन्दू जनता को बहा

ले जाने और नष्ट करने को उत्पन्न हुई थी रुक गई।

अरब, ईरान, टर्की, शाम और हमारे पड़ौसी देश काबुल जाबुल, गौर, गजनी सबके पूर्वजों का धर्म नष्ट हो गया। सब मुसलमान हो गये। केवल हिन्दू बच रहे क्योंकि वह अपनी आवश्यकता के लिये विचार को एकाग्र करने का भेद जानते थे। चौथाई शताब्दी के पूर्व इसी प्रकार की शंका फिर उत्पन्न होगई। डा. के. एम. बनरजी, पं० नीलकंठ शास्त्री आदि के ईसाई हो जाने से नवयुवक हिन्दू समझने लगे थे कि हिन्दू धर्म में कोई विशेष गुण बाकी नहीं रहा। वह वर्तमान विज्ञान और फिलोसफी के सामने सर नहीं उठा सकता क्योंकि सिवाय गपोल के इसमें और कुछ बाकी नहीं रहा। इस गलत विचार ने अनुभव हीन नवयुवकों को ईसाई धर्म में ढकेल दिया। हिन्दू घबड़ाये। उन्होंने अन्तिम बार फिर एक मुक्ति दिखाने वाले के लिये अपने विचार को एकाग्र किया। ईश्वर की दया से महर्षि स्वामी दयानन्द ने प्रकट होकर वेदों का डंका बजा दिया। विरोधी भयभीत हो गये। नवयुवकों की आँखें तिलमिला गईं कि यह क्या हुआ। क्या वेद वास्तव में ज्ञान विज्ञान के भण्डार हैं। यदि ऐसा नहीं है तो यह व्यक्ति, अँग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ होते हुये भी किस प्रकार ऐसे गूढ़, सूक्ष्म, विज्ञान और दर्शन के रहस्य बताता है। आश्चर्य में आकर सब उसकी ओर खिंच गये। डर, भय जाता रहा और हिन्दू धर्म बच गया; किन्तु शोक कि जो महापुरुष हिन्दू मात्र की उन्नति और भलाई के मिशन को उभारने को आया था, अपने ही भाइयों ने उसके सिद्धान्त को गलत समझा। ना समझी फैलगई। यदि अज्ञान से एक ओर वह हिन्दू होकर हिन्दुओं को बुरा भला कहने लगे तो दूसरी ओर उन्होंने परस्पर विरोध और झगड़े का वातावरण उत्पन्न कर दिया। सनातनी

भाइयो ! स्वामी दयानन्द तुम्हारा शत्रु नहीं था। यह लोग ऐसी महापुरुष और पवित्र ऋषि के नाम मात्र के चेले हैं जो असलियत को नहीं समझते। आर्य भाइयो ! तुमने स्वयँ भूल से ऋषि दयानन्द के मिशन को उभरने का अवसर नहीं दिया और न उसकी शिक्षा के रहस्य को ग्रहण किया। यही परस्पर विरोध और झगड़े का कारण है।

यह केवल आलोचनात्मक शब्द थे। हिन्दुओं ने अन्तिम वार अपने विचार को एकाग्र किया था, जिसके परिणाम स्वरूप स्वामी दयानन्द प्रकट हुए थे। क्या यह असत्य है ? अभी बहुत से लोग जीवित हैं जो मेरे विचार का समर्थन करेंगे। क्या यह सत्य नहीं है कि हिन्दुओं में बंगाल की खाड़ी से लेकर कश्मीर की पहाड़ी भूमि तक और नेपाल की ऐवरैस्ट नामी ऊँची चोटी से लेकर हिन्द महासागर के किनारे तक खलवली नहीं पड़ गई थी ? क्या सब किसी ऐसे महा पुरुष के प्रकट होने की आवश्यकता नहीं अनुभव करते थे जो उनके धर्म का सहायक बनता ? यह सब सत्य है और दयानन्द वास्तव में ऐसा ही मुक्ति प्रदान करने वाला होकर आया था।

यह हिन्दुओं के जातीय विचार की दृढ़ता की अन्तिम घटना थी। हम विशेष कर पार्टी के पक्षपातीय अंग न बन कर एक साधारण हिन्दू के रूप में उनको यही बात बताने के लिये आए हैं कि तुम्हारी मुक्ति, भलाई, रक्षा और कहीं नहीं है केवल तुम्हारे अन्तर में है और तुम्हारे विचार की एकाग्रता है। शोक! पातंजलि और व्यास के नाम लेने वालो ! तुम किस प्रकार असलियत से कोसों दूर चले जा रहे हो। आओ इस विचार की एकाग्रता के भेद को समझो। योग तुम्हारा है तुम्हारी पैतृक सम्पति है। क्यों इसको हाथ नहीं लगाते और क्यों उससे काम नहीं लेते ? वर्तमान सभ्यता युग में एक ऐसा समय

आवेगा जब पच्छिमी लोग इसका महत्त्व समझेंगे। अच्छा हो कि तुम इस सम्पति को जो तुम्हारी है स्वयं अपने हाथ में लो और संसार को शिक्षक बनाने के लिए उसकी शिक्षा के अनुसार विचार की एकाग्रता के भेद को समझो क्रियात्मक बनो, भूल न करो। तुम न तो केवल प्राचीन ढंग का अनुकरण करो और न केवल नवीन प्रकाश के चकाचोंध से घबड़ाओ। समय की मांग व समय की आवश्यकता, समय के वातावरण, प्रभाव और घटनाओं को देखकर योग के विचार को एकाग्र करने का भेद सीखो। एक व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से इसको सीखे, समाज समाज की हैसियत से और जाति जातयिता के दृष्टिकोण से इसे सीखे। थोड़े ही दिनों में व्यक्ति, समाज और जाति में हर स्थान पर उन्नति के दृश्य अद्भुत रूप में दृष्टिगोचर होंगे।

विचार की एकाग्रता व्यक्ति, समाज और जाति की जीवन शक्ति कही जा सकती है। इसके बिना न कोई उद्देश्य पूरा होता है न किसी उन्नति का चिन्ह पैदा हो सकता है। जो अपने विचार को एक तरफ एकाग्र होने का अवसर नहीं देगा जीवन यात्रा में उसके पांव लड़खड़ा जायेंगे; कारण कि सिवाय विचार की एकाग्रता के और किसी वस्तु पर हमारे संयम, आकर्षण और अधिकार की नींव स्थापित नहीं हो सकती। जाति जाति न रहेगी और समाज सप्त नक्षत्रों की भाँति या बिखरे हुये पन्नों की भाँति छिन्न भिन्न हो जायगी, यदि विचार को एकाग्र नहीं कर सकती। यह सच्चाई है, यह ज्ञान है, यह उपासना है, यह पंथाइयों का पंथ है और यही साधकों के मार्ग का आदि और अन्त है।

हर व्यक्ति जो संसार में उत्पन्न हुआ है किसी न किसी प्रकार के विचार की एकाग्रता का परिणाम है और वह एकाग्रता उसको पूर्वजों से मिलती है। पहिले जाति फिर वर्ग और

फिर व्यक्तियों को देखो। तुमको उनके रहन सहन, रूप रंग में भिन्नता दिखाई पड़ेगी। यह भिन्नता क्यों है? कारण यह है कि जाति वर्ग, कुटुम्ब के पूर्वज ने अपना जीवन एक विशेष विचार को एकाग्र करके आरम्भ किया था और वह विचार उसकी सन्तान में किसी न किसी रूप में मौजूद है। एक ब्राह्मण की चाल ढाल एक मिस्त्री से भिन्न है। एक कायस्थ का जीवन एक खत्री से विपरीत है। इसका कारण यही है जिसका वर्णन ऊपर किया गया है। जब तुम मनुष्य अथवा मनुष्य जाति का अध्ययन करने लगते हो तुमको आश्चर्य होता है कि यह एक दूसरे से इतने भिन्न क्यों हैं। उनके जीवन उद्देश्य क्यों भिन्न हैं? वे सब के सब एक ढंग के क्यों नहीं हैं? यदि तुमको तनिक भी ज्ञात होता कि इन सब की बनावट में एक विशेष विचार की एकाग्रता का अंश है तो तुम इस प्रकार कठिन से कठिन और गूढ़ से गूढ़ रहस्यों को आसानी से हल कर लेते। विचार की एकाग्रता वास्तव में एक प्रकार का लगातार संघर्ष है। इसके अतिरिक्त यह और कुछ नहीं है। यदि तुम आज मुझे यह बतादो कि अमुक व्यक्ति की इच्छा व आवश्यकता क्या है और वह क्या सोचा करता है तो मैं आसानी से उसका चाल चलन बता दूँगा और तुम स्वयं प्रायः पता लगा सकोगे कि जीवन में उसका स्थान और स्थिति क्या होगी। यह एक कानून है जिसको कागज के पन्नों पर लेखनी ने अंकित नहीं किया परन्तु यह सत्य है—"कि इच्छा ही उद्देश्य की पूर्णता की भविष्य वाणी है और आवश्यक वातावरण के अन्तरगत नियत समय पर उसका प्रकट होना सम्भव है।"

एक जाति का एक व्यक्ति वास्तव में इसके अतिरिक्त कि जो कुछ उसके वंश के पूर्वज ने सोचा या चाहा था और कुछ नहीं है। इस उत्तराधिकार के अतिरिक्त उसने भी स्वयं अपने

हृदय और मस्तिष्क में कुछ न कुछ बढ़ोतरी की है। जब तुम किसी विशेष पुरुष को जीवन के मार्ग में पग रखते हुये देखो, चाहे वह सफल हो अथवा असफल, कोई बड़ा सरकारी अफसर हो, अथवा भंगी, सब के बारे में समझलो कि यह सब किसी न किसी प्रकार के विचार की एकाग्रता के परिणाम हैं। इनमें से कुछ तो इसी अपने विचार की एकाग्रता के ही रूप हैं और कुछ अपने पूर्वजों के विचार की एकाग्रता की सामिग्री हैं।

एक ओर करोड़पति हैं, दूसरी ओर निर्धनी, जिनको पेट की रोटियाँ तक नहीं मिलतीं। इनको किसने ऐसा विभिन्न बनाया? इनमें भिन्नता की रेखा कब और कहां खींची गई? इसका जबाव यह है कि अनेकों वर्ष हुये जब विचार शक्ति ने इनके जीवन की भिन्नता प्रारम्भ की थी। यदि तुम किसी जाति के इतिहास की वास्तविकता की खोज करना चाहो तो उसके व्यक्तियों के रहन सहन का अध्ययन करो। हर जीवन के पर्दे पर यह कानून लिखा हुआ मिलेगा। यह कानून मिटता नहीं और न कोई इसको नष्ट कर सकता है। हर व्यक्ति किसी न किसी प्रकार की एकाग्रता के अनुसार उत्पन्न हुआ है परन्तु यहाँ यह बात भी बता देना आवश्यक है कि आया वह उस विचार की एकाग्रता पर अपने जीवन में स्थिर भी रहेगा या नहीं, अथवा अपने ढंग पर वह कोई नई सूरत और विचार ग्रहण करेगा।

अमीर के घर फकीर, वली के घर शैतान, ईमानदार के घर बेईमान और बुरे के घर भले इसी प्रकार पैदा हो जाते हैं। हिरण्यकश्यप के यहाँ प्रह्लाद पैदा हुआ। वह अत्यंत निर्दई और मलीन था। तुम पूछोगे कि यहाँ यह भिन्नता कैसी? मैं इसका उत्तर कई प्रकार से दे सकता हूं। इस समय केवल

दो प्रकार के उत्तर दिये जाते हैं। पहिला, प्रह्लाद ने स्वयं अपना जीवन किसी विशेष विचार की एकाग्रता से बना लिया। दूसरे ऐसा भी होता है कि कभी कभी एक अपवित्र व्यक्ति के हृदय में पवित्र विचार दृढ़ता से एकाग्र हो जाता है और उस समय जो सन्तान उत्पन्न होती है पवित्र होती है। यह दो कारण भिन्नता के हैं। आप देखते होंगे कि एक व्यक्ति बड़ा कंजूस और धन का पुजारी है जिसने अपने जीते जी एक पैसा भी खर्च नहीं किया, परन्तु उसका पुत्र फिजूल खर्च होता है और क्षण मात्र में सारी सम्पति नष्ट भ्रष्ट कर देता है। यहां विचार की एकाग्रता विशेष प्रकार से छुपी हुई कार्य करती है। जो व्यक्ति रुपया कमाता है उसके हृदय में भोगने की इच्छा दृढ़ता के साथ स्थित रहती है। यह चाहता है कि रुपये को भोगे, परन्तु हविष और तृष्णा से रात दिन जमा करने की चिन्ता में लगा रहता है मगर भोगने का विचार भीतर ही भीतर एकाग्र होता जाता है और उस लड़के को पैतृक सम्पति के रूप में मिलती है। यह कारण है कि यह फिजूल खर्च निकलता है।

राजपूताने के इतिहास में इस प्रकार के व्यक्ति दिखाई देंगे जो विचार की एकाग्रता के विशेष उदाहरण बतायेंगे। कभी कभी एक डरपोक व्यक्ति के घर बड़ी वीर संतान उत्पन्न हो जाती है, जैसे उदयसिंह का लड़का राना प्रताप बड़ा बहादुर पैदा हुआ है। इसका कारण इनके अतिरिक्त और कुछ नहीं कि चाहे उदयसिंह स्वयं भोग प्रिय रहा हो परन्तु उसके हृदय में बहादुरी के प्रेम का विचार एकाग्र होता गया और राना प्रताप को विरासत में मिला।

परन्तु यह सदैव एक निश्चित नियम नहीं हैं। जब मनुष्य किसी विचार को दृढ़ता से अपने हृदय में जमा लेता है वह अपने उद्देश्य को पूरा ही करके छोड़ता है और विरासत का

नियम यहाँ कोई प्रभाव नहीं डालता। मनुष्य जो चाहे बन सकता है। यदि वह वकील होना चाहता है तो वकील और जजों की संगत में रहे। किसान और जमींदारों का संग छोड़ दे। यदि वह गायक बनना चाहता है तो गाने वालों के पास उठे बैठे। इससे व्यक्तिगत विचार को पुष्टि मिलेगी और वह सफल हो जायगा। यदि उसके भावों में बाप दादा का उत्तराधिकार है तब तो कहना ही क्या है। उसकी संकल्प शक्ति बल्लियों ऊँची हो जायगी, जैसे गुरू गोविन्द सिंह के पिता गुरू तेगबहादुर ने और गुरू गोविन्दसिंह के पुत्र जोराबर सिंह और फतहसिंह ने संसार में बलिदान के बड़े गौरवशाली और उच्च आदर्श कायम किये। परन्तु फिर भी यदि कोई व्यक्ति मृतक पुरुषों की विरासत नहीं मानता तो अपने लिये नया रास्ता निकाल सकता है और स्वतन्त्रता पूर्वक अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये विचार को एकाग्र करके उसको पूरा कर सकता है।

विचार की एकाग्रता के प्रगट करने के लिये रोग और स्वास्थ्य दो तरीके हैं। जब मनुष्य का सोच विचार, एकाग्रता की सहायता से एक परिपक्क और स्थाई शक्ति बन जाता है, वह या तो शरीर को मजबूत बनावेगा अथवा उसको कमजोर कर देगा। इससे या तो हमारा काम अधूरा रहेगा, या पूरा हो जावेगा। मनुष्य का स्वास्थ्य आज क्यों खराब है ? कारण यह है कि इसकी जड़ में सैकड़ों वर्षों से दूषित विचार की एकाग्रता की सामिग्री लगाई गई है। यदि कोई व्यक्ति सौन्दर्य और स्वास्थ्य के सम्बन्ध में अपने विचारों को एकाग्र करना जानता है तो उसके लिये रोगी अथवा कुरूप होना नितान्त असम्भव है। यदि कोई व्यक्ति धन, अधिकार और शान्ति के हेत अपने विचारों को एकाग्र कर सकता है तो उसके लिये निर्धन, अनाधिकारी अथवा अशान्त होना असम्भव है।

यदि हम इस बात को भली प्रकार जान लेते तो हम अपने जीवनों को अत्यन्त सुन्दर और शुद्ध बना लेते और अपनी सन्तान के हेतु एक अच्छी सम्पत्ति छोड़ जाते। याद रखो कि खेल कूद, काम धंधे, जप तप, पूजा पाठ और साधन अभ्यास में तुम विचार की एकाग्रता की आवश्यकता को अपनी दृष्टि से दूर नहीं होने देते। जो वस्तु चाहते हो उसको अवश्य प्राप्त करो। यह विचार के एकाग्र करने का खुला हुआ और स्पष्ट परिणाम है। दूसरों के विचार के बन्धन में आने से इंकार करदो चाहे वह जीवित हों अथवा मृतक। स्वयं सोच समझकर अपने जीवन का उद्देश्य बनालो। उस पर "चित्त की समस्त वृतियों" को झुका दो और उसको निगाह से दूर न होने दो और तुम अपने उद्देशको अवश्य प्राप्त कर लोगे।

जब तुमने विचार को एकाग्र कर लिया तो बाहरी पदार्थ, बाहरी परिस्थितियाँ और घटनायें तुमको कोई हानि न पहुँचा सकेंगी। तुम मालिक हो और तुमको अधिकार है। चाहे ऐसा कार्य हाथ में लो जिस पर विचार को एकाग्र कर सको जो थोड़े दिन में नष्ट हो जाने वाला है चाहे अपने जीवन के मिशन को इस प्रकार बनालो कि कार्यकर्त्ता बराबर चारों ओर से झुकते हुये उसको सहायता देते रहें और वह सदैव बना रहे और अमिट हो जाय। यह सब तुम्हारे हाथ में है। चाहे निर्धनी होकर दूर दूर भीख मांगते फिरो अथवा अपने जीवन को सम्मान और योग्यता के उच्च स्थान पर बिठा सको और दूसरों के लिये अच्छी मिसाल बनकर पीढ़ी दर पीढ़ी के लिये ऐसा प्रबन्ध कर जाओ कि तुम्हारी कौम विरोधी प्रभावों से बचकर सदा जीवित रहे। हिन्दुओं के अब तक जीवित रहने और विरोधी शक्तियों के नीचे न कुचले जाने का केवल यही कारण है।

ऐ ऋषियों की शिक्षा और भावों के अधिकारियो ! कितने लज्जा की बात है कि आत्मा की वास्तविकता की शिक्षा पाकर भी तुम ऐसी आलस्य की दशा में पड़े हो। आओ, विचार को एकाग्र करने का भेद सीखो और तुम्हारा भला होगा। इसमें तनिक भी सन्देह न करो।

सार्वभौमिक सिद्धान्त की समझ की कुंजी

सचाई सार्वभौमिक है, सर्व व्यापक है और सब कुछ है, परन्तु क्या हर व्यक्ति में सत्यता की समझ एक ढंग से आ जाती है ? नहीं। जब तक कि मनुष्य का मन और बुद्धि इस योग्य न बन जाय कि वह प्रकृति के एकत्व को समझ सके तब तक इसकी समझ का आना असंभव है।

चूंकि सत्य हर जगह है वह कण कण में व्याप्त है, परन्तु पूर्ण सत्यता और कण कण की सत्यता में अन्तर है। जो व्यक्ति बाह्य जानकारी की बातों में रहता है उसकी समझ अधूरी होगी और वह सत्यता के हर अंग को न समझ सकेगा और इस कारण उसकी समझ में एक विशेष प्रकार का दोष हर समय रहेगा। जो व्यक्ति मनुष्य शरीर में केवल एक अंग, मानों हाथ को देखता है उसको आँख, नाक, कान, हृदय और मस्तिष्क आदि की क्या खबर है। उसका ज्ञान केवल हाथ तक सीमित है। हाथ केवल एक अंश है। पूर्ण के ज्ञान की प्राप्ति इसके लिये कठिन है। चूंकि पूर्ण का ज्ञान नहीं है अतः अपूर्ण ज्ञान का दोष उसको शान्ति देने वाला सिद्ध न होगा। अंश में स्थूलता है और कुल में सूक्ष्मता है। अंश अपूर्ण है और कुल में पूर्णता है। इस कारण अपनी अपनी श्रेणियों में रहने के अनुसार समझ में भी दोष और विघ्न रहेगा और

सत्यता की पूर्ण समझ का आनन्द अलोप रहेगा। वेदान्तियों ने प्रकृति के नियम समझाने में बार बार 'भ्रम' की व्याख्या पर अधिक जोर दिया है, परन्तु मनुष्यों को इस 'भ्रम' की भी समझ भली प्रकार नहीं आई। भ्रम या धोका सदा सीमित बुद्धि के साथ रहता है। संकीर्ण विचार अथवा और प्रकार की सीमा दृष्टि को ऊँचा नहीं होने देती और वास्तव में यह समझ की कमी ही 'भ्रम' है। इसी लिये कहा गया है कि किसी पूर्ण पुरुष के साथ रह कर उसकी सेवा और सत्संग में शनैः शनैः इस रोग का इलाज करो।

जो व्यक्ति सार्वभौमिक सचाई में रहता है उसको न तो 'भ्रम' होता है न धोका, न मृत्यु उसको सताती है और न चिंता। वह हर समय सच्चे जीवन की गोद में रहता है जहां मृत्यु, काल, परिवर्तन अथवा माया की पहुँच नहीं है। इसके लिये आंशिक स्थितियों की विरोधी अवस्थायें सदा को दूर हो जाती हैं।

सत्यता के दर्शन के अभिलाषियो! क्या सचमुच तुमको पूर्ण सत्य की खोज है? जिनको सत्य का एक बार भी दर्शन होता है वह फिर कुछ के कुछ हो जाते हैं। धर्म की सारी परिभाषायें उसको प्रकट करने के स्थूल प्रयत्न हैं। कारण कि लेखनी अथवा जिभ्या उसका वर्णन नहीं कर सकते। मन बुद्धि में वह नहीं आ सकता। जप तप, शारीरिक पवित्रता, यज्ञ हवन, व्रत, नमाज केवल सत्यता के मार्ग के यात्रियों की प्रारंभिक श्रेणियां हैं जिनका महत्व बच्चों के खेल से अधिक नहीं है।

फिर भी धर्म की सहायता से ही उसकी समझ आती है और जब यह समझ आजाती है प्रकृति मन्दिर बन जाती है और सचाई अविनाशी देवी दृष्टिगोचर होती है। उसका पुजारी स्वयं अहंकार और सीमितपने के तंग घेरे से निकल कर आत्मा के सूक्ष्म भावों से उसकी पूजा करता है और उससे

मिलकर उसका हो जाता है। फिर आंशिक बन्धन की जंजीर उसके लिये टूक टूक हो जाती है।

इस समझ के आने के लिये बहुत सी बातें हैं जिनका होना परमाश्यक है।

(१) सरलता—मनुष्य में भोले भाले बच्चों की तरह सरलता हो। जैसे बच्चे अपनी मां से लगे लिपटे रहते हैं वैसे ही वह अपनी असली माता से लगा लिपटा रहे। मसीह ने कहा है कि जब तक तुम बच्चों की भांति सादा स्वभाव नहीं बन जाते तुम आसमानी राज्य में प्रवेश नहीं पा सकते। राधास्वामी दयालु कहते हैं—"बाल रूप होय जग को पेखो।" यह परम हंस गति है। सनक, सनन्दन और सनतकुमार ने इस अवस्था को सबसे उच्च माना है। पुराण का कथन है कि वे सदैव बाल्य अवस्था में रहते हैं। सरलता विश्वास और सच्चाई बच्चों के मुख्य गुण हैं।

(२) विश्वास—यह बहुत कठिन है। सच्चा विश्वास इस प्रकार का हो कि मनुष्य अपनी खुशी, भलाई और आशा उस पर बलिदान करदे। अपने अहंकार के अस्तित्व को छोड़ कर दूसरे अस्तित्व में जो सर्वाधार है विचरने का विश्वास रक्खे। यह बहुत कठिन है। कभी कभी शरीर जल कर राख हो जाता है और धूल के ढेर से भयानक भूत उठ खड़ा होता है। जब तक तुम यह न समझलो कि 'सच्चाई' ही सब कुछ है, जब तक तुमको 'सच्चाई' में इतना विश्वास न हो, यह हालत नहीं पैदा हो सकती। तुमको पूरा पूरा विश्वास हो कि जब यह शारीरिक मंदिर नष्ट हो जायगा, दूसरा शानदार और चमकीला मन्दिर उसके खंडहरों में उत्पन्न होगा। मृत्यु के द्वार में प्रवेश करना ही 'जीवन' से भेंट करना है। भौतिक पदार्थों से केवल

इसीलिये सहायता ली जाती है कि वह द्वार खुल जाय और सच्चाई के विस्तृत क्षेत्र में प्रवेश होने का अवसर प्राप्त हो।

मंसूर ने सूली पर चढ़कर प्रेमियों को संबोधित किया कि यह प्रीतम के उच्च स्थान पर चढ़ने की सीढ़ी है जो चाहे आ सकता है। यही मसीह की सूली है। यही बुद्ध के निर्वाण पद की सीढ़ी है। यही शून्य वादियों का शून्य स्थान और कैवल्य पद का फाटक है और यही संतों के प्रेम का मार्ग है।

(३) पवित्रता—मन बुद्धि पवित्र हों। बुरे विचारों की जड़ कट गई हो, अहम् भाव दूर हो गया हो। जो लालटेन काली होती है उसके भीतर से न तो प्रकाश की लौ उठती है और न प्रकाश अपना प्रतिबिम्ब फेंकता है। हृदय की अपवित्रता अंधकार है। इसी के कारण अविद्या के भ्रम उत्पन्न होते हैं। यही दुख और कष्ट का कारण है। यदि पवित्रता नही है तो व्यर्थ कोई व्यक्ति सच्चाई का नाम, जबान पर न लावे। वह भाग्यहीन सच्चाई का दर्शन न कर सकेगा।

(४) आदर्श सदैव दृष्टि के सामने रहे। यात्री सदैव अपने सिद्धान्त का सच्चा रहे। जो उसने समझा है, जिसको वह सच्चा समझता है, जो सिद्धान्त है वह उसके अंतर में क्रियात्मक रूप धारण करे। जहां सच्चाई होती है वहाँ गलती नही होती। आदर्श के अनुकूल जीवन असली प्रार्थना और सेवा है। उठो, अपना पग आगे ही पड़ता जाय। यह धर्म बातें बनाने वालों का नहीं है। यह निष्ठा है। 'निष्ठा' वालों का धर्म ही निराला है। जीवन यात्री को मार्ग तय करना है। पंथ में शामिल होने वालों के लिये सच्चे पंथाई की तेज चाल सीखनी चाहिये। वह मनुष्य सच्चे हैं जो मर कर सच्चाई को सिद्ध करते हैं। ऐसे ही जीव अपना उद्देश्य पूरा कर लेते हैं। एक कवि का कथन है—अपने आपको बिना मिटाये प्रीतम का दर्शन नहीं मिलता। इस शराब को बेचन

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY
PURNADAYAL

वाला पहिले खुद उसको खरीदता है।

"धन्य हैं। वह व्यक्ति जो सच्चाई के भूके प्यासे हैं कारण कि उनको आनंद प्राप्त होगा।" यह आध्यात्मक उन्नति की जरूरी शर्त है।

प्रेम के मार्ग में झूठा नहीं ठहर सकता। झूठे प्रेमी की यहां कोई पूछ नहीं। यदि सच्चाई और नेक नीयती है तो राज्य दरबार में प्रवेश की सनद मिल जाती है। कोई रोक टोक नहीं है। यदि थोड़ा भी दोष है तो इस गौरव का अधिकार नहीं। जो सच्चे बनकर प्रेम के धर्म में प्रवेश होते हैं परमात्मा स्वयं उनका प्रेमी बन जाता है। यदि प्रेम की आड़ में कोई और ग़रज़ छुपी है तो फिर याद रहे:—

'स्वार्थ आजाता है तो हुनर छुप जाता है।'

जो सच्चाई के इच्छुक हों वह अहम् भाव को दूर करदें नहीं तो उससे सदैव बंचित रहेंगे। झूंठी इच्छा, पक्षपात, स्वार्थ, कट्टरपन और सिद्धान्त के लिये लड़ना झगड़ना, बाद विबाद की आदत सच्चाई के निकट कभी नहीं आने देंगे, कारण कि उनके परदे में अहंकार रहता है। क्या तुम नहीं देखते कि एक कहता है, ईश्वर निर्गुण है, दूसरा कहता है वह सरगुण है और फिर विवाद प्रारंभ होजाता है। शब्दों की बाढ़में इस प्रकार उमड़ने लगते हैं कि मनुष्य गोते खाने लगता है। इनका परिणाम अपने पक्ष की ओर झुकाव और समर्थन होता है हृदय अशुद्ध होजाता है। इस कारण वह सदा बंचित रहते हैं।

कोई लड़कर इस बात का निर्णय न करे कि कौन बड़ा और अधिक सच्चा है। सच्चाई के प्रेमी केवल उसके दर्शन के इच्छुक रहते हैं।

सादगी विश्वास और सचाई यह तीनों जरूरी शर्तें हैं। जिस में यह मौजूद है, वह सचाई से कभी बंचित नहीं होगा और न

उसके लिये भ्रम का भय होगा। यदि वह आरंभ में अज्ञानी भी होगा तो भी अन्त में जीवन से संपर्क प्राप्त करेगा।

आदर्श पुरुषों के जीवन, उनका निश्चित प्रभाव

धर्म कर्म में, व्यापार में, दर्शन और तर्क शास्त्र में, अभिप्राय कि हर स्थान पर और हर काम में अनसमझी ने इस तरह अपना पाँव जमा लिया है कि छुद्र दृष्टि वाला मनुष्य सच्चाई की ओर से आँखें मीचे हुये अंधा धुन्द अज्ञान के गहरे गड्ढे में गिरता जा रहा है। वह न स्वयं सोचता है कि सच्ची बात क्या है न दूसरे सच्चे अनुभवी मनुष्यों की बातों पर वह विश्वास करता है। ज्ञान की तरह अज्ञान का क्षेत्र भी बहुत बढ़ता है और अज्ञानी अंधी और मूर्ख भेड़ों की भाँति एक दूसरे के पीछे कुँये में गिर रहे हैं। आर्यवर्त ज्ञान, बुद्धि और धर्म की भूमि है। यहाँ ज्ञान की हवा चलती थी, बुद्धि के मेंह बरसते थे और धर्म की खेती हर जगह लह-लहाती थी। यह धर्म क्षेत्र है। यहां धर्म ही बोया जाता था, धर्म ही की फसल काटी जाती थी और धर्म के ही भोजन से सबका पालन पोषण होता था। गंगा जमुना में भक्ति का जल अब भी जारी है। हिमालय विश्वास की तरह अचल रूप से खड़ा हुआ है। आम की बाड़ियाँ ज्ञान कल्पद्रुम की भांति अब भी बहुतायत से फल दे रही हैं, परन्तु दुर्भाग्य से कर्म के फेर से प्रतिकूलता के कारण भौतिक पदार्थों की पूजा की आँधी कुछ ऐसी जोर से बही कि सबको आँखें धूल धक्कड़ से भर गईं। अंधेरा चारों ओर फैल गया, हाथों हाथ नहीं सूझता

और हमारे बंधु इतने अज्ञान में फंस गये कि सच्ची बात के सुनने समझने और मानने के लिये भी तत्पर नहीं है।

दोहा—साँचे कोई न पतीजिये, झूठे सब पतियाय।
गली गली गोरस फिरे, मदिरा बैठ बिकाय॥

दूध सचाई है क्योंकि वह देह, मन और बुद्धि को ताज़गी देता हुआ मनुष्य को आनन्द और शांति प्रदान करता है मगर दूध का निरादर किया जाता है। मदिरा निकृष्ट झूठ है। वह शारीरिक अंगों में अस्वाभाविक गर्मी उत्पन्न करती है जिससे शारीरिक अंग खराब हो जाते हैं, हाथ पांव काँपने लगते हैं और मनुष्य समय से पहिले बुरी तरह कुत्तों की मौत मरता है मगर दूध के चाहने वाले थोड़े हैं और मदिरा के इच्छुक अधिक हैं। दूध सस्ता है और मदिरा महंगी है परन्तु दूध नहीं पिया जाता। मदिरा की बोतल ढालना हर व्यक्ति चाहता है। इसी प्रकार हमारे देश में इस अंधेर के काल में सच्चाई का निरादर किया जा रहा है और झूठ जोर पर है। सचाई में सादगी है। यद्यपि उसका रूप अधिक आकर्षक है फिर भी उधर मनुष्य नहीं झुकता। झूठ को नमक मिर्च लगाकर लोग अधिक प्रिय बना देते हैं और सब उसकी ओर झुक जाते हैं। जीवित पुरुषों को कोई नहीं पूजता, मृतकों की पूजा का रिवाज है। कोई कब्र पूजता है, कोई समाधि से माथा रिगड़ता है। जीवित अतिथि का किसी घर में आदर नहीं होता। कागजी चित्रों से मकानों की दीवारें सजाई जाती हैं। असली गुलाब के फूल कम लोग सूंघते हैं और कागज के नकली फूलों का घर घर रिवाज है। चेतन्य की पूजा कहीं नहीं होती; जड़ प्रकृति से २ बंध रहता है। अपनेमन की किताब कोई नहीं पढ़ता, कागजी किताबों का रिवाज जोर पर है। जीवित साधु की कोई खोज नहीं करता; वह कार्य लोग समाचार पत्रों और प्रेमफिलेटों से

लेना चाहते हैं। क्या यह अंधेर नहीं है ? यहां कोई बात किसीके दिल दुखाने की नहीं की जाती किन्तु असलियत की ओर ध्यान दिलाने का विचार रहता है। तुम स्वयं सोचो कि क्या इस बात में सच्चाई भी है या मैं योंही बकवास करता हुआ झकमार रहा हूं।

हमारे यहां सनातन से गुरु की महिमा पर जोर दिया जाता है। गुरु का आदर सब से अधिक किया जाता था, यहां तक कि यह श्लोक कहता है:—

"गुरु ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देव महेश्वरः।
गुरु साक्षात परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः॥"

वेदों के विश्वासी गुरु शब्द के महत्व पर जान देते थे। उपनिषिदों के ऋषि गुरुओं का सबसे अधिक आदर करते थे, सम्प्रदाय वाले गुरु को ईश्वर समझते थे। दर्शनकारों ने गुरु के आदर श्रद्धा भक्ति पर जोर दिया है। पंथाई गुरु को सब कुछ समझते हैं।

जा खोजत ब्रह्मा थके, नर मुनि देवा।
कहैं कबीर सुन साधुआ, कर सतगुरु सेवा॥

साफ साफ कहा गया है कि निगुरे की मालिक के दरबार में पहुँच नहीं होती। गुरु मत होना जरूरी है। मन मत होना भूल है।

गुरु बिन माला फेरते, गुरु बिन देते दान।
गुरु बिन दान हराम है, जाय पूछो वेद पुरान॥

गुरु बिन गति नहीं, ज्ञान बिन मत नहीं। गुरु मुख श्रेष्ठ है। गुरु विमुख भ्रष्ट है। गुरुमत सच्चाई की वेदी पर हर समय प्राण देने को तत्पर रहता है, कारण कि उसका मार्ग पूर्ण शरणागत का मार्ग है। मनमत सत्य के हेतु कभी जान न देगा, कारण कि यह विरोध और अधर्म पर जान देने वाला

है। पुराण इसके समर्थन की कथाओं से भरे पड़े हैं।

असलियत यह है कि आज तक बिना गुरू के किसी का काम नहीं बना। मनुष्य को पग पग पर शिक्षा की जरूरत है। जब लिखने पढ़ने, कला कौशल सीखने में गुरू के बिना काम नहीं बनता तो कैसे मान लिया जाए कि धर्म के मार्ग में बिना गुरू के उन्नति हो सकेगी।

जो गुरुमत नहीं है उनके जीवन और कारोबार को देखो। तुमको स्वयं मालूम हो जायगा कि उनमें अध्यात्मिकता है अथवा नहीं। सारा जीवन दण्ड कमण्डल में व्यतीत हुआ परन्तु कुछ हाथ नहीं आया; कारण कि गुरु द्वारा कार्य नहीं किया गया।

गुरु की महिमा का गीत केवल हिन्दुओं में ही नहीं गाया जाता किन्तु जहां कहीं परमात्मा के अद्वैतपन का उपदेश होगा, जहां अध्यात्म की शिक्षा होगी, वहां याद रखो हर जगह गुरू पूजा की पृथा होगी। बुद्धदेव जो अध्यात्म के प्रकाश का चमकीला सूर्य था, गुरु का उदाहरण पेश करते हुये उसके अनुकरण का उपदेश सुनाता है और बुद्ध की शरण में जाने को आदेश देता है। उसको दीक्षा का मंत्र यह है:—

ओ३म् बुद्धम् शरनम् गच्छामि।
ओ३म् संघम् शरनम् गच्छामि॥
ओ३म् धर्मम् शरनम् गच्छामि॥

अर्थ—ओ३म् मैं बुद्ध की शरण लेता हूं। ओ३म् मैं बुद्ध के संघ की शरण लेता हूं। ॐ, मैं बुद्ध के धर्म की शरण लेता हूं।

जैनियों के तीर्थंकर गुरु थे और उनके सामने महावीर स्वामी की मिसाल प्रस्तुत की गई है। सूफियों में साफ साफ कह दिया गया है:—(१) जिस किसी की खुदा के साथ बैठने की इच्छा हो उससे कहो कि गुरू के दरबार में जाकर बैठे। (२) गुरू के पास एक क्षण का बैठना सौ वर्ष की

सच्ची और शुद्ध प्रार्थना से अधिक श्रेष्ठ है। (३) गुरू का हृदय मसजिद है वहां ही खुदा रहता है और इसी कारण वह सब का पूजा घर है। (४) पैगम्बर ने कहा कि मैं जमीन और आसमान में कहीं नहीं रहता।। (५) भक्त के हृदय में बसता हूं, अगर तुझको मेरी खोज है तो मुझको भक्तों में ढूंढ़।

मुसलमानों के सूफी संतों में गुरु की पूजा पर बहुत जोर दिया गया है। मौलाना रूम गुरु का प्रशंसा में कुछ शेर लिखते हैं जिनका अनुवाद इस प्रकार है:—

(१) गुरू का हाथ अन उपस्थितों के लिये भी छोटा नहीं है। उसका हाथ सिवाय अल्लाह के किसी के हाथ में नहीं है। (२) उसका हाथ बहुत लंबा और ऊंचा है और सात स्थानों के ऊपर पहुँचा हुआ है। (३) उसका हाथ पूर्ण तत्व से मिला हुआ है और इसी प्रकार वह अपनी पूर्णता में स्थित है। (३) मनुष्य में सूर्य स्वयं गुप्त है। यदि तुझे समझ है तो समझले।

पश्चिमी देशों में यूनान के दार्शनिक फीसा, गोरस, प्लेटो आदि भी इसी के समर्थक थे। इस्कंदरिया का दर्शन (न्यूप्लेटोनिज्म) जो ईसाई धर्म और यूनानी दर्शन का मिश्रण है इसका प्रेमी था। यहूदियों में ईसा ने अपने आपको गुरू के रूप में पेश किया था। जिसके उद्देश्य को न समझ कर आज इस धर्म का रूप कुछ से कुछ बन गया है। अभिप्राय कि जहां थोड़ा भी अध्यात्म था वहां गुरू के महत्व की मान्यता कराने का पूरा प्रबन्ध किया गया।

अब इस समय भौतिक पदार्थ की पूजा की बाढ़ के प्रभाव से दुनियाँ में यह आवाज उठी कि गुरू की बिलकुल जरूरत नहीं। गुरूडम ने बहुत हानि की है और लोग असल सिद्धान्त को न समझ कर मार्ग से भटक गये और धर्म से हट गये।

गुरू का पद क्यों इतना बड़ा है; इस पर किसी और समय

बहस की जावेगी। इस समय हम साधारण ढंग से इस सवाल का जवाब बिलकुल साफ और सादा शब्दों में देना चाहते हैं।

संसार में जितने धर्म हैं उनके सिद्धान्त को तीन श्रेणियों में बाँट दिया जाता है:—एक कर्मकाण्ड, दूसरा दर्शन, तीसरा महापुरुषों की कथायें। कोई धर्म तुमको ऐसा न मिलेगा जो इन तीनों से खाली हो। कर्म करने की चीज है, दर्शन उस कर्म की व्याख्या का प्रयत्न है और महापुरुषों की कथायें उस कर्म के क्रियात्मक दृष्टान्त हैं। यह महा पुरुष वास्तव में गुरू की हैसियत रखते थे। इनकी जीवनी से बहुत सी बातों पर प्रकाश डाला जा सकता है, परन्तु वास्तविकता का असली रूप उस समय दृष्टि के सामने आता है जब कोई जीती जागती हुई मूर्त्ति निगाह के सामने आती है। यह समय का गुरु है। उसका पिछले और अगले गुरुदेवों से अधिक आदर किया जाता है क्योंकि जो लोग गुजर गये अब वह अपने काम नहीं आ सकते। जो मौजूद हैं वही कुछ काम बना सकते हैं। संभव है कि लुकमान बहुत बड़ा हकीम हुआ हो, मगर अब वह हमारा उपकार नहीं कर सकता, हमारा काम तो केवल जीवित हकीम से ही निकलेगा।

गुरु का जीवन वास्तव में अध्यात्म का आदर्श जीवन होता है। हर व्यक्ति देखता है कि सत्संग का प्रभाव शीघ्र और विशेष प्रकार का होता है। जैसे छूत का रोग लग जाता है और देखते देखते हर जगह फैल जाती है, इसी प्रकार मनुष्य किसी विशेष पुरुष के क्रियात्मक जीवन को देखकर इस प्रकार का बन जाता है कि वही भाव उसमें उत्पन्न होने लगते हैं और वह असाधारण उन्नति कर जाता है। पड़ौस में किसी एक आदमी को चलता पुरजा बन जाने दो। फिर देखो कि किस

प्रकार वहाँ हर व्यक्ति में विशेष प्रकार की सर गर्मी और और महनत की आदत आ जाती है और उसके विचार और प्रभाव इस तरह रंग रूप भरने लगते हैं कि सबकी सूरतें उसी एक प्रकार की बनने लग जाती हैं। खरबूजे को देखकर खरबूजा रंग पकड़ता है। यह सत्यता सत्संग, वार्तालाप और उपासना में हर जगह विचित्र खेल दिखलाया करती है।

कहा जाता है कि गुरु के सत्संग के प्रभाव से चेले में विशेष प्रकार से भाव पैदा होते हैं और वह आसानी से उसी प्रकार की न केवल आदतें सीखने लगता है किन्तु भीतर ही भीतर उसकी आत्मा जाग्रत होकर ऊँची उठने लगती है। कुछ लोगों का विचार है कि गुरु की अन्तर दृष्टि का कुछ भाग पाकर चेला ठीक हो जाता है। यह सही है। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है, परन्तु उसके साथ यह समझ लेना कि वह अन्तर दृष्टि अर्थात आध्यात्मिक शक्ति बँटकर नष्ट हो जाने के कारण हानि में रहती है गलत है। एक जलता दीपक है। उससे जितने चाहो सैकड़ों दीपक जलालो। उसको कोई हानि नहीं पहुँचती किन्तु उसके आध्यात्मिक प्रतिबिम्ब से प्रभावित होकर प्रकाश का एक ऐसा चक्र बन जाता है जो उच्चकोटि का प्रकाश हुआ है। गुरु जीवित प्रकाशमय दीपक होता है। अध्यात्म का प्रकाश सदैव जीवित व्यक्ति से मिलता है। जो दीपक बुझ गया है वह दूसरे दीपक को नहीं जला सकता। जलते दीपक से ही और दीपक जल सकेंगे। यह जलती लेम्प गुरु है जो ईश्वर की तरफ से सत्य का प्रकाश बाँटने आया है। उसकी मिसाल उसका जीवन, उसकी रहनी सहनी, इसकी आदतें विशेष प्रकार की होती हैं। जो व्यक्ति उसके पास उठता बैठता है। उसको और किसी चीज की तलाश की जरूरत नहीं है। सब कुछ

उसके गुरु में मौजूद है बशर्ते कि वह सच्चा जिज्ञासु है। यह याद रखो कि गुरु बनने के गुण साधारण मनुष्य में नहीं होते। ऐसे महा पुरुष संसार में कभी कभी आते हैं। और जिस समय इस प्रकार के अध्यात्मिक सूर्य आकर चमक उठते हैं हर तरफ जीवन, गरमी और प्रकाश बहुतायत से फैल जाता है। इस बात के बताने की जरूरत नहीं है कि कौन गुरु है कौन नहीं है। सूर्य को कोई व्यक्ति दीपक लेकर नहीं बताता। जब सूर्य आता है वह स्वयं प्रगट हो जाता है। जहाँ यह प्रगट होते हैं शिक्षा का क्रम स्वयं प्रचलित होने लगता है और जिस प्रकार जलती लैम्प के चारों ओर तड़पते हुये पतंगे प्राण निछावर करने को आ जाते हैं वैसे ही परमार्थ के जिज्ञासुओं के झुन्ड के झुन्ड वहां आ जाते हैं। चाहे यह किसी जाति और वंश में हों इसका तनिक भी ख्याल नहीं किया जाता। गुरु नानक एक अनजान और छोटी हैसियत के पटवारी के पुत्र थे। कबीर साहब जाति के जुलाहे थे परन्तु यह गुरु थे। गुरु होकर संसार में आये और सबको इनका सिक्का मानना पड़ा। वह मनुष्य वास्तव में बड़े भाग्यहीन हैं जो ऐसे गुरुओं के प्रकट होने के समय उनके उपदेश और सत्संग का लाभ नहीं उठाते और गलत समझ लेकर गरुडम की बुरी तरह निन्दा करते हैं। इन गुरुओं के लिये इस बात की भी आवश्यकता नहीं कि वह संसारी दृष्टि-कोण से बड़े विद्वान हों। उनकी अंतर दृष्टि खुली हुई होती है। वह सब ज्ञान को आंखों से देखते हैं और संसार को वह ज्ञान प्रदान करते हैं जो और किसीसे प्राप्त नहीं होता।

कबीर साहब संस्कृत क्या भाषा तक नहीं जानते थे परन्तु बनारस के विद्वान पंडित उनके पाँव पर माथा रगड़ते थे।

इस प्रकार विशाल हृदय वाले जब कभी संसार में आते हैं हजारों लाखों मनुष्यों में अध्यात्म आ जाता है। आज कल

पुस्तकों का जोर है। क्या तुम किताबों के पढ़ने वालों में अध्यात्म की झलक पाते हो? राम राम कहो। किताबें वह विद्या नहीं दे सकतीं। कारण कि वह जड़ हैं, मुर्दा हैं। जीवन सदा जीवित पुरुषों से मिलता है। पंजाब में जब जब गुरु प्रकट हुये तुमने देखा कि कितने जीवन बलिदान करने वाले उनकी सेवा में उपस्थित हुये। उनका जीवन कितना गौरवशाली था। क्या अब भी वही दशा है?

यह एक अटूट नियम है कि प्रकाश जब आवेगा जीवित सूर्य से आवेगा और वह जीवित सूर्य केवल गुरू है। इसका पद मनुष्य से बहुत अधिक है। वह आईडियल पुरुष है।

गुरू की बात तो एक तरफ रही, तुम यह प्रति दिन जीवन की घटनाओं में देखते हो कि जिस सभा, जिस समाज या जिस कान्फ्रेंस में दो एक भी मन चले कार्य कर्त्ता होते हैं वह अपनी आत्मिक उमंग का प्रतिबिम्ब दूसरों पर डालकर सबको उत्साही बना देते हैं और खुशी खुशी कार्य करते हुये अपने इन्स्टीट्यूशन के उद्देश को पूरा कर लेते हैं। जहाँ इस प्रकार के उत्साही और सच्चे आदमियों की कमी हो, समझलो कि वह कार्य सदैव अधूरा रहेगा।

किसी शहर में जब दो चार परिश्रमी आदमी कारखाने खोल देते हैं तो पहिले चाहे वहां मुर्दापन रहा हो, मगर उनकी देखा देखी औरों को भी लालसा होती है। वह भी हाथ पांव मारने लगते हैं, और वह शहर तिजारत की मण्डी बन जाता है। पहिले पहिले कम समझ और नादान लोग समझते हैं कि यह सफल न होंगे और इनका विश्वास भी नहीं किया जाता, परंतु जब यह लोग औरों की मिसाल सामने रखकर धैर्य और दृढ़ता से कार्य करने लगते है दूसरों को उसे देखकर आश्चर्य होता है। अंग्रेजी में एक कहावत है—"जबानी उपदेश से

मिसाल बनकर दिखाने का अधिक प्रभाव होता है।" उत्साही और परिश्रमी लोगों को देखकर आलसी और निकम्मे आदमी भी कहने लगते हैं कि जो कार्य औरों ने किया है वही कार्य हम भी कर सकते हैं और इनका यह कहना झूठ नहीं होता किन्तु अक्षरशः सही उतरता है।

मनुष्य जब किसी काम की ओर ध्यान देता है तो आरंभ में उसके हृदय में कमजोर विचार रहते हैं, परन्तु जब थोड़ी भी सफलता हुई, वह आगे उन्नति करता हो जाता है। वह न केवल अपना ही काम बना जाता है किन्तु दूसरों के लिये एक मिसाल छोड़ जाता है और इस दृष्टि से वह जनता का ऋणी सिद्ध होता है।

हमारे देश में नाज की पैदावार कम है। यदि दो चार दस बीस मन चले लोग होशियारी और सावधानी से कृषि की ओर झुके तो सम्भव है कि एक एक दाने के बदले दस दस दाने पैदा हों। उस समय और किसानों को भी साहस होगा और अन्न की पैदावार की कमी पूरी हो जावेगी। एक को देख कर दूसरा काम करता है। एक को देखकर दूसरे की हिम्मत बढ़ती है और जहां काम काज की ओर मन झुका मनुष्य को अपनी आत्मा की शक्ति पर भरोसा आने लगता है। उसकी इच्छा शक्ति बढ़ जाती है और उसकी सफलता दूसरों के लिये एक मिसाल हो जाती है।

जिनके सामने किसी विशेष प्रकार के उत्साह का उदाहरण नहीं होता, वह उस समय तक जब तक कि विशेष प्रकार के मन बुद्धि वाले न हों वास्तविक उन्नति नहीं कर सकते। एक आलसी लड़का घर में पढ़ता है। उसको दो चार लाइनें भी याद नहीं होतीं, परन्तु जब वह पाठशाला में दाखिल होता है, अपने साथियों के उदाहरण को देख कर कड़े से

कड़ा परिश्रम करने लग जाता है और परीक्षा में सफल हो जाता है और उसका जीवन सुफल हो जाता है।

यह उदाहरण हैं। आदर्शभूत जीवन संसार में हर जगह सुख और लाभ का कारण होता है, परन्तु अध्यात्म के क्षेत्र में इसका खेल बहुत ही अधिक आश्चर्य जनक होता है। अन्तरीय और बाहिरीय दुनियां की बहुत कुछ बातें मिलती जुलती हैं। इस कारण धार्मिक जगत में यह कैसे संभव है कि इस प्रकार के असाधारण उदाहरण न हों। पुस्तकों का धर्म कोई धर्म नहीं है। किताबें पढ़े हुये अक्रियात्मक मनुष्य उस गधे के समान हैं जिसकी पीठ पर चन्दन लदा है परन्तु वह उसकी सुगन्ध लेना नहीं जानता। सच्चा धर्म वह है जिसका प्रकाश मनुष्य के जीवन में चमकता हुआ दिखाई दे। उसकी वाणी, रहनी सहनी और आदतें सब धार्मिक हों और ऐसे व्यक्ति गुरू कहलाते हैं।

गुरू की पहिचान कठिन है। फिर भी महात्माओं ने कहा है कि जो वास्तव में अध्यात्म के सोते में स्नान किया करते हैं उनकी आंख और माथे में एक विशेष प्रकार का प्रकाश होता है। उनकी बातें प्रभावशाली होती हैं और उनके पास जाने से आत्मा ऊपर की ओर चढ़ने लगती है और उसको शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है। यदि ऐसे गुरू की सेवा प्राप्त हो तो क्या कहना है। इसके सत्संग से सरलता से अध्यात्म का लाभ प्राप्त होगा।

दोहा—गुरु को कीजै दन्डवत, कोटि कोटि प्रणाम।
कीट न जाने भृंग को, गुरु करलें आप समान॥

ध्यान की क्रिया से, सत्संग के लाभ से, उपासना के प्रभाव से स्वयं रंग बदलता हुआ चला जायगा और मनुष्य जीवन का उद्देश पूरा होगा। लोग सारी उम्र ठोकर खाते हैं, सार हाथ

नहीं आता और वह क्यों आवें जब गुरु से सम्बन्ध स्थापित करने में हिचकिचाहट रहती हो।

वस्तु कहीं ढूंढ़े कहीं, किहि विधि आवे हाथ।
कहें कबीर तब पाइये, जब भेदी लीजे साथ॥
भेदी लीना साथ कर, दीनी वस्तु लखाय।
कोटि जन्म का पंथ था, पल में पहुँचा जाय॥

इस कारण हर व्यक्ति को चाहिये कि अध्यात्म का धन प्राप्त करने के लिये जहां तक हो सके गुरु की खोज करे, ताकि उसका उदाहरण, उसके भाव और उसके विचारों का उत्तराधिकार आसानी से हाथ आजावे।

वह तन विष की बेलरी, गुरु अमरत की खान।
शीस दिये जो गुरु मिलें, तोभी सस्ता जान॥

मुझमें शक्ति है, मैं शक्ति का प्राकट्य हूं, मैं स्वयं शक्ति हूँ।

जीव ब्रह्म नहीं है और न ब्रह्म जीव है परन्तु आश्चर्य की बात यह है कि वह एक दूसरे से पृथक और भिन्न भी नहीं हैं। हाथ शरीर नहीं है न शरीर हाथ है, परन्तु क्या तुम शरीर को हाथ से और हाथ को शरीर से अलग समझते हो। सूर्य की किरणें सूर्य नहीं कहलाती, न समुद्र की बूंद समुद्र है मगर इनमें एक प्रकार पारस्परिक सम्बन्ध है और यही सम्बन्ध जीव और ब्रह्म में है। संकीर्ण विचार, संकीर्ण हृदय, संकीर्ण दृष्टि के और कम हिम्मत मनुष्य इसकी समझ नहीं रखते। व्यर्थ तर्क वितर्क में समय नष्ट किया करते हैं। यदि उनकी दृष्टि विकसित होती, उनका साहस बढ़ा चढ़ा होता, उनकी बुद्धि उच्च होती तो आनंद

की उमंग में सार तत्व का खेल देखते और ब्रह्म की समस्त शक्ति के अधिकारी बनकर कह उठते कि सारी शक्ति हममें है, हमारी है और हम से है। समुद्र में लहरें उठती हैं, ज्वार भाटे आते हैं। क्या इन लहरों के पीछे समुद्र की शक्ति नहीं है ? क्या यह लहरें अपने अनूठे व्यक्तित्व का खेल दिखाती हुई उससे भिन्न हैं ? हाथ हाथ है, पाँव पाँव हैं और कान कान हैं। यह शरीर के वैसे ही अंग हैं जैसे समुद्र की बूंदें समुद्र के अंग हैं। बिलकुल इसी प्रकार सारी प्रकृति, सारा भूमंडल, पृथ्वी और आकाश के सारे जीव उस सच्चिदानन्द के अंग हैं। सबका अपना अपना व्यक्तित्व है। सब अलग अलग हैं, परन्तु विचार में भी वह ब्रह्म से पृथक नहीं। ब्रह्म के टुकड़े नहीं हैं, बांटा नहीं जा सकता और सबमें ब्रह्म की शक्ति कार्य करती हुई दिखाई देती है।

यह शक्ति व्याप्त है, सर्व व्यापी है, जैसे हमारे शरीर की सारी शक्ति नस नस और नाड़ी नाड़ी में है। कौन कहता है अथवा कह सकता है कि हाथ को शरीर की शक्ति प्राप्त नहीं है। जब हाथ कार्य करने पर आता है वह शक्ति सर्व व्यापी होते हुये भी हाथ को केन्द्र बनाकर कैसा तमाशा दिखाती है। चित्रकार चित्र खींचता है, लोहार लोहा पीटता है, बढ़ई लकड़ी गढ़ता है, आविष्कार नये आविष्कार और खोज से काम लेता है। आखिर यह शक्ति कहां से आती है ? शरीर ही ने यह शक्ति उसको दे रक्खी है। यदि विश्वास नहीं तो हाथ को शरीर से अलग करके देखलो, परन्तु तुम हाथ को शरीर नहीं कह सकते। केवल उसका अंग कह सकते हो। शरीर कुल है और अंग उसके अंश हैं, परन्तु कुल की शक्ति अंश में मौजूद रहती है। इसी प्रकार ब्रह्म को कुल समझो। वह एक अपार असीमित समुद्र है। इसमें तरंगें उठती

हैं और वह सारी तरंगों का आधार रूप स्वयं रहता है। उसके बिना कोई कार्य नहीं चल सकता और न कोई तत्व काम कर सकता है। आग उसी शक्ति से जलती है, मेंह उसी की आज्ञा से बरसता है, हवा उसी की प्रेरणा से बहती है। ब्रह्मा, विष्णु, महेश उसकी लहरें हैं। उनमें जो शक्ति है वह ब्रह्म की शक्ति है। वही दुर्गा है, वही सावित्री है, वही लक्ष्मी है और उन्हीं शक्तियों की दया से ब्रह्मा, विष्णु और शिव शक्तिमान हैं। तुममें हममें और सारे जगत में जो शक्ति है वह उसी की है। प्रह्लाद ने अन्तर दृष्टि से उस शक्ति का दर्शन किया और परीक्षा के समय वह हिरण्य कश्यप से कह उठा—

मुझमें तुझमें खड्ग खंभ में, जहाँ देखो तहां राम ही राम।
अंधे पिता समझ नहीं तुझको, सारे जग में व्यापक राम॥

स्वामी निश्चल दासजी उसका अनुभव करके लय अवस्था में दूसरी तरह इस प्रकार गा उठे :—

उदधि अपार सरूप, मम लहरी विष्णू महेश।
विधि रवि चन्दा वरुण, जम शक्ति धनेश गनेश॥
जा कृपाल सर्वज्ञ को, हिय धारत मुनि ध्यान।
ता को होत उपाधि ते, मो मैं मिथ्या भान॥
बोध चाह जाको सुकृत, भजत राम निष्काम।
सो मेरो है आत्मा, काको करूँ प्रणाम॥

एक सूफी जो इतनी विकसित दृष्टि वाला नहीं था परंतु महात्माओं के तेज का दर्शन कर चुका था आन्तरिक आनन्द और लय अवस्था में कहता है कि मनुष्य परमात्मा नहीं है परन्तु परमात्मा से अलग भी नहीं है। हर रंग में उसीका रंग है हर दृश्य में उसीका रूप है। फलों में उसीकी दमक है कोइल में उसीकी चहक है।

मैं नदी को देखूं या नदी के दृश्य को देखूं। या मैं पहाड़

जंगल अथवा मैदान को देखूं। हे परमात्मा हर तरफ तेरी महानता के अनगिनत दृश्य हैं और मैं आश्चर्य में हूँ कि इन दो आंखों से क्या क्या देखूं। उपनिषद् कार ऋषि जो अद्वैतपने का भेद जानते थे इस प्रकार कहते हैं :—

"जिस प्रकार गीली लकड़ी में आग लग जाने से धुआं चिनगारी आदि निकलते हैं इसी प्रकार ऐ मैत्री! उस महान आत्मा की स्वांस से ऋग, यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद, इतिहास, पुराण, विद्या, उपनिषद्, श्लोक, सूत्र, अनुव्याख्यान. व्याख्यान निकलते हैं। यह सब उसीकी स्वांस हैं।" (बृहदारण्यक उपनिषद्)

'जो सूर्य में रहता है सूर्य उसको नहीं जानता। सूर्य जिसका शरीर है, जो सूर्य में रह कर उसको कायदे से चलाता है वह तेरा ही अमर अविनाशी आत्मा है।' 'जो अग्नि में रहता है, अग्नि को नहीं जानता, अग्नि उसका शरीर है, जो अग्नि के भीतर रहकर उसको नियम पूर्वक चलाता है वह तेरा ही अजर और अमर आत्मा है।' आदि आदि (बृहदारण्यक उपनिषद्)

उपनिषदों को गौर से पढ़ो, वेदान्त के सूत्र को विचारो, सन्तों की वाणी का पाठ करो। इन सब से एक ही प्रकार के राग की आवाज आती है। इन पर ही क्या, अपने हृदय से पूछो, अपने मन में विचार करो, तुम सत्य के समझने में धोका न खाओगे।

जब इस महान आत्मा को उसके कार्य की दृष्टि से देखा जाता है वह सगुण कहलाता है और जब उसको सामूहिक और अद्वैत भाव से देखा जाता है वह निर्गुण कहलाता है।

अभिप्राय यह कि वही सब कुछ है और रचना की सब सामिग्री उसी के दृश्य की सामिग्री है। सूर्य चमकता है। जल के घड़े, लोटे, बरतन सब में उसका गोल गोल प्रतिबिम्ब

दिखाई देता है। फिर यह प्रतिबिम्ब किसका है, कहां से आया है? यह सब सूर्य ही तो हैं और सूर्य ही के तो हैं। इसी प्रकार वह व्यापक शक्ति सब में व्यापक होकर हर जगह दिखाई देती है। हर जगह उसी का प्रकाश है। तत्व एक है। उसके प्रगट करने के सामान भिन्न भिन्न हैं। यह सब सामिग्री उसी से है और उसी की हैं और उसी में है। व्यापक शक्ति एक है। दो तीन चार नहीं हैं। अस्तित्व एक ही है, दस बीस नहीं है। यदि तुम दो तीन मानते हो तो माना करो, परन्तु उनको व्यापक न हो।

एक से जब दो हुये तब लुत्फ यकताई कहाँ।
एक है वह दो नहीं बस बन्द करलो तुम जुबां॥

इस लिये यह भली प्रकार समझलो कि वह एक ही है और सब में एक ही है। एक ही जानो, एक ही देखो और एक ही कहो।

सब से पहले तुमको यह समझना है कि वह सर्व शक्तिमान, ज्ञानी और व्यापक है और हमको तुमको उसी के तेजस की प्रशंशा करनी चाहिये। तेजस ही शक्ति है और जीवों के सारे दृश्य उसी एक व्यापक शक्ति के खेल हैं।

तुम अज्ञानी हो। तुम को खबर नहीं है। जब मैं तुमको समझाता हूं तुम व्यर्थ भय और शंका से अपने कान बन्द कर लेते हो। अपनी आँखे न मीचो। प्रकृति का दृश्य तो देखो जिससे तुममें असली शक्ति आवे और वह शक्ति ब्रह्म की शक्ति हो।

तुम कार्य करते हो परन्तु दिल नही लगाते, कारण कि तुमको अपनी वास्तविकता का पता नहीं है और तुम असफल हो जाते हो। क्या तुममें कार्य करने की शक्ति नही है? तुम काम करने की शक्ति रखते हो। तुम्हारा हृदय कभी न कहेगा कि तुम काम नहीं कर सकते। यह प्रमाण है कि तुम में शक्ति है।

जो व्यक्ति कहता है कि मैं कर सकता हूँ, वह अपने हृदय की छुपी हुई शक्ति को सिद्ध कर रहा है और जहाँ यह शक्ति हो वहाँ असफलता कैसी! असफलता तो शक्ति हीनता सिद्ध करती है।

थोड़ी देर विचार करो और और तुमको स्वयं पता लगजायगा कि जीवन में जो शक्ति है उसका भंडार कहीं और जगह नहीं है। तुम्हारे अपने हृदय में है और इस हृदय का संबन्ध ब्रह्म से है। जैसे रेल चलती है और उसके डिब्बे अलग अलग हैं उसके पहिये भी अलग अलग हैं परन्तु सबका सम्बन्ध इंजन से है। शक्ति इंजन में भरी है, उसी में पानी और कोयले का ढेर है। उनकी सहायता से भाप बनती है और जब एक अनुभवी इन्जीनियर उसको चालू करता है गाड़ी चलने लगती है और सब की चाल इंजन से आती है। गाड़ी का हर एक डिब्बा इंजन के आधीन हैं। यदि इंजन से अलग करदो तो उसकी चाल जाती रहेगी। यदि इंजन से जोड़ दो तो यह चालू हो जायगा। इसी प्रकार ब्रह्म तुम्हारा इंजिन है और उसकी शक्ति से तुम शक्तिवान बने हो। उससे पृथक होना मृत्यु है और उससे मिलाप जीवन है। यदि उससे तुमको सीधे सीधे शक्ति प्राप्त करने का भेद मालूम हो जाय तो सम्भव नहीं कि तुम निर्बल और असफल रह सको। गाड़ी के उदाहरण से कहीं यह न समझ लेना कि तुम इस प्रकार के पुर्जे हो किन्तु तुम्हारी हैसियत कुछ और भी है। वह जड़ है तुम चैतन्य हो। वह इंजिन से जोड़े जाने के लिये किसी और के आधीन है और तुम किसी के आधीन नहीं। कमी केवल इतनी है कि तुम निराधार बिचार और भ्रम में पड़े हो। नहीं तो तुम स्वयं रचना की व्यवस्था की चालू कड़ियां हो और सीधे सीधे अपने स्वरूप या असल से सहायता ले सकते हो। केवल एक बार इस नियम को समझ

लो, स्वयं शक्ति शाली और सफल बनजाओगे।

जिस समय तुम किसी कार्य को करने के लिये हाथ उठाते हो तुम देखते हो कि चित्त की वृति किसी विशेष स्थान पर एकाग्र होकर हाथ को शक्ति शाली बना देती है। यदि कार्य करते समय तुम अपनी शक्ल शीशे में देखो, तुमको मालुम हो जायगा कि शरीर में कहीं शक्ति का भंडार है और चित्त की वृतियाँ एकाग्र होकर उसको हाथों में आने के लिये विवश कर रही हैं। जहाँ थोड़ी सी भी गति हुई हाथ चोट पर चोट लगाने लगता है और तुमको आश्चर्य होता है कि यह शक्ति कहाँ से आगई, क्योंकि आलस्य के समय तुम असमंजस में थे। तुम को काम के पूरा होने की आशा भी नहीं थी। सच्ची प्रार्थना के समय भी यही नियम काम करता है। जिस हृदय से यह शक्ति आई थी, उसका सम्बन्ध ब्रह्म से है। जिस समय तुम अपने शारीरिक हृदय में चित्त की वृतियों को एकाग्र करना सीख लोगे, तुम्हारा हृदय और उसकी धार ऊपर चढ़ कर इसी नियम के अनुसार ब्रह्माण्डी मन के सोते से शक्ति की धार जारी करा देगी। कारण कि तुम्हारा मन स्वयं ब्रह्माण्डी मनका प्रतिबिम्ब है और उसको इससे सम्बन्ध है। सूर्य आकाश पर है। पानी में हर जगह उसका प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। यह प्रतिबिम्ब सबके सब मिले हुये हैं और उसी की किरणों के द्वारा वह प्रतिबिम्ब नीचे उतरता है। क्या तुम यह भी नहीं समझते? यह सारी बातें विज्ञान (साइन्स) के दृष्टिकोण से कही जा रही हैं। तुम्हारे हृदय का असली भंडार ब्रह्मांडी मन है और यह सब मन उससे हैलोग्राफ की कड़ियों की भांति मिले हुये हैं। तनिक ऊपर दृष्टि करो। तुमको वास्तविकता का ज्ञान हो जायगा।

जो शक्ति तुम में आती है वह ऊपर से ही आती है और

इस कारण तुम किसी दशा में उससे पृथक नहीं हो। तुम और वह एक ही हो। जो तुमको उससे पृथक बताता है वह झक-मारता है और व्यर्थ तुमको कमजोर करता है। तुम्हारे अपने व्यक्तित्व में सबसे अधिक विश्व व्यापी शक्ति मौजूद है। तुम उससे काम लेना नहीं जानते, इसलिये व्यर्थ दुखी हो।

अस्तित्व एक ही है, दो चार नहीं। यदि इसको समझ लो तो फिर तुम ईश्वर से कभी पृथक नहीं कहे जा सकते। और न पृथक रह सकते हो। केवल समझ का फेर है। थोड़ा एक बार प्रयत्न करके वास्तविकता को समझ लो। यह तुम्हारा मन ब्रह्माण्डी मन बन जायगा। वैसे तो चाहे तुम जानो अथवा न जानो तुम उसके प्राकट्य के भिन्न भिन्न रूप हो और बस। जब ईश्वर को सर्व व्यापक मानते हो तो वह उससे पृथक कब है। कोई भी उससे पृथक नहीं है। पृथक होना झूठा भ्रम है और निरर्थक विचार है।

तुम शायद यह पूछो कि यह कैसे सम्भव है। असीमित शक्ति की सीमा क्या है? कहने को तो मैं सब कुछ कह चुका, समझना या न समझना तुम्हारा काम है, परन्तु फिर एक दृष्टान्त देकर तुमको समझाता हूं। विचार करो कि तुम किसी घर के भीतर बैठे हो। उसमें एक खिड़की खुली हुई है। हवा आ रही है परन्तु केवल इतनी ही जितना उसको अन्दर आने का रास्ता मिलता है। क्या तुम इस बात से इन्कार कर सकते हो कि जो थोड़ी हवा भीतर आरही है उसके आधार में असी-मित हवा का भंडार नहीं है और क्या वह उससे अलग है? भला देखें तो तुम्हारी शक्ति! तुम उसको उससे अलग तो करदो अथवा अलग करके दिखादो। बाहर की तमाम हवा और हवा के भंडार की सारी शक्ति इससे मिली जुली है। इस कारण मैं कहता हूं कि जहां कहीं शक्ति का प्राकट्य है यह शक्ति

किसी व्यापक शक्ति से सम्बन्धित है। कारण कि वह असीमित व्यापक और सर्व शक्तिमान हैं। बिना इसके कहीं भी शक्ति नहीं आसकती। इस कारण यदि तुमको ब्रह्म कहा जाता है, तो बुरा क्या है ? क्या तुम ब्रह्म नहीं हो ? तुमको याद रखना चाहिये कि मन एक ही है और तुम्हारे मन उसके वैसे ही अक्स हैं जैसे लोटे और प्याले में सूर्य के बहुत से अक्स रहते हैं। इसलिये तुम जिनको सीमित आत्मायें समझ रहे हो उनमें असीमितपना संभव है। यदि तुम थोड़ा भी इसको समझलो तो न केवल असीमित शक्ति के भंडार से सहायता मांग सकोगे किन्तु उमंग और आनन्द में आकर कहोगे कि हम भी सब कुछ कर सकते हैं और हम ही सब कुछ हैं। हमारे सिवा और क्या है !

इस प्रकार का विश्वास मन में उत्पन्न करो। फिर तुम जो चाहोगे वही हो जाओगे। जो व्यक्ति ब्रह्म को जानता है वह ब्रह्म हो जाता है। 'ब्रह्मवित ब्रह्म भवति।' परन्तु साथ ही साथ यह ख्याल रक्खो कि जहाँ सन्देह उत्पन्न हुआ वह शक्ति फरजी तरीके से सीमित दशा में आ जाती है। विश्वास जाता रहता है और मनुष्य कमजोर और निकम्मा बनकर संसार के पांव की ठोकर खाने लगता है और हर एक व्यक्ति उसको अपना फुटबाल बना लेता है। इसीको जीव कहते हैं और जब तक यह जीव है, वह ब्रह्म नहीं है। जीव सीमित और ब्रह्म असीमित है। जीव ब्रह्म कभी नहीं कहलाता।

वह मूर्ख हैं जो वेदान्त की निन्दा करते हैं। वेदान्त वास्तविकता की साइंस है। इन नादानों की आंखें नहीं खुली। इनको कुत्तों की हड्डियों पर लड़ने दो। इनको क्या समझाते हो। व्यर्थ सिर मारने से क्या लाभ ! लड़कों की बातें लड़कों की सी होंगी। तुम ईश्वर जीव और प्रकृति के झगड़ों में पड़े रहो.

खूब लड़ो, जब तक तुम्हारी दृष्टि ऊँची न होगी तुमको वास्तविकता का दर्शन न होगा।

वेदान्त के दो भाग हैं—एक 'नेति नेति', दूसरा 'एति एति'। एक कहता है कि 'है' दूसरा कहता है 'नहीं है।' तुम 'नहीं है' से सम्बन्ध रखो या 'है' का दामन पकड़ो। आओ, मैं तुमको सत्यता दिखाऊँ। 'है' का अंग गौरवशाली होता है और 'नहीं है' के अंग में भ्रम रहता है। भ्रम से बचो और सच्चा ज्ञान गुरू से प्राप्त करो। मैं तुम से यह नहीं कहता कि तुम मरोगे। मैं तो तुमको यह बताने आया हूँ कि तुममें अमर जीवन है। मृत्यु से तुम्हें कोई सम्बन्ध नहीं। सत्य में मृत्यु नहीं है, मृत्यु भ्रम में है और मैं भ्रम के गड्ढे से तुमको निकालने आया हूं। यह कभी न कहो कि 'मैं यह नहीं कर सकता' किन्तु यह कहो कि 'मैं सब कुछ कर सकता हूँ।' तुम सच मुच सब कुछ कर सकते हो, कारण कि तुममें शक्ति है और तुम्हारे आधार में असीमित शक्ति है। तुमसे ही सबको शक्ति प्राप्त होती हैं। अधिक नहीं दो चार दिन इस पर विचार करो और तुम व्यवहार, व्यौपार, कला कौशल सब कार्यों में सफलता प्राप्त कर सकोगे और शक्तिशाली बन जाओगे।

यदि मन का दर्पण शुद्ध है तो तीर्थ व्रत करने की भी जरूरत नहीं। केवल विचार से सम्बन्ध रखो और थोड़े ही दिन के अभ्यास से तुम देखोगे कि ब्रह्मान्डी मन की शक्ति किस प्रकार तुममें प्रकट होती है।

आओ और मेरी तरह महा मंत्र का रोज जाप किया करो—'मुझमें शक्ति है। मैं शक्ति का भंडार हूं। मैं स्वयं शक्ति हूं' और तुम न केवल अपना किन्तु संसार का काल्पित दुख मिटा सकोगे।

सुनो सुनो में खुशी का पयाम लाया हूँ।
मैं नूरे हक हूँ न तारीकी और साया हूँ॥

खुशी और सुख

हर व्यक्ति सुख का इच्छुक है और हरएक को उसकी खोज रहती है परन्तु यदि तुम पचास आदमियों से पूछो कि तुमको किस बात से खुशी मिलेगी तो इन सबके उत्तर पृथक और भिन्न होंगे। पचास आदमियों के उत्तर पचास से कम नहीं किन्तु अधिक होंगे कारण कि सबके भाव अलग अलग हैं और सबके विचारों में भिन्नता है।

एक व्यक्ति कहता है कि यदि मुझको अमुक वस्तु मिलजाए तो मैं खुशी हो जाऊं। दूसरा कहेगा कि यदि मुझ को खूब खाने पीने को मिले तो मुझको दुख न होगा। तीसरा कहेगा कि यदि मुझको लिखना पढ़ना अथवा गाना बजाना आता तो मैं सुखी होता। इसी प्रकार और भी। वास्तव में यह लोग सुख को नहीं चाहते। यह भ्रम में पड़े हैं और अपनी अपनी ढपली और अपना अपना राग अलापते हैं और प्रत्यक्ष रूप में एक विचार के पीछे दौड़ रहे हैं। मैं इनको दोष नहीं लगाता। इनमें साहस है और उन्नति की इच्छा है। अधिक अच्छी स्थिति बनाने का विचार है और यह बातें स्वयं बुरी नहीं हैं, अच्छी हैं परन्तु इन सब बातों से सुख और खुशी का सम्बन्ध क्षणिक और अंशमात्र है। उनको न सुख की पहचान है और न उसको प्राप्त करने सच्चा साधन ज्ञात है। सुख वास्तव में हृदय के सन्तुष्ट रहने की अवस्था है और वह केवल संतोष में देखी जा सकती है। जिसमें यह गुण है और जिसने अपनी वर्तमान दशा पर संतुष्ट रहने का सबक सीख लिया है खुशी उसीके हिस्से में आवेगी।

दूसरे उससे सदा वंचित रहेंगे।

धन में खुशी नहीं है। इसका अनुमान हर व्यक्ति कर सकता है। जिनके पास अधिक रुपया पैसा नौकर चाकर लाव लश्कर है वह खुश नहीं हैं। वह सुन्हेरी और रुपेली गाड़ियों में सवार होते हैं परन्तु, मन में दुखी रहते हैं। वह दुख के छुपाने का वड़ा प्रवन्ध करते हैं मगर वह जानते हैं कि उनसे सुख कोसों दूर रहता है। तनिक धनी मनुष्यों के पास बैठो तो मालुम होगा कि उनका जीवन कैसा दुखी है। किसीका स्वास्थ्य खराब है, किसीको औलाद का दुख है, कोई किसी बात की इच्छा में मर रहा है। डाक्टर इलाज करते हैं। मंत्री और सलाहकार रात दिन उनका दिल वहलाते हैं। सब कुछ किया जाता है परन्तु फिर भी उनको सुख नहीं। एक वस्तु मिल गई दूसरी की इच्छा है। दूसरी मिलो तो तीसरी का ख्याल है। भला कभी उनको सुख मिल सकता है। ऐसा विचार असम्भव है और पागलपन है।

मनुष्य विद्या प्राप्त करता है, गाना बजाना सीख जाता है. परंतु क्या इससे उसको खुशी मिलती है? नहीं, कभी नहीं। कारण कि यह सब खुशी की वस्तुयें नहीं हैं। मनुष्य अपने जीविका उपार्जन में सफल हो जाता है, सब कुछ कर लेता है. पवलिक में धाक बंध जाती है परंतु हृदय ज्यों का त्यों दुखी बना रहता है।

जिन्होंने संसार को श्मशान भूमि बना रखा है और जिनके मुंह पर हर समय हवाइयाँ उड़ती रहती हैं वह बड़े मूर्ख हैं और धर्म और दर्शन की झूठी शिक्षा ने उनको शिकार बना कर दबोच रक्खा है। उनका तो कहना ही क्या है, यह बेचारे रोते आये और रोते जाते हैं. परन्तु जो कुछ भी खुशी प्राप्त करने का विचार रखते हैं वे भी गलत मार्ग के यात्री हैं।

सच्ची खुशी यदि कहीं देखने को मिलती हैं तो वह केवल बच्चों में होती है कारण कि स्वाभाविक रूप से उनमें वर्तमान दशा में सन्तुष्ट रहने का गुण विचित्र रूप से देखा जाता है। राजा और रंक के लड़के एक ही दशा में रहते हैं। चाहे उनके माँ बाप की हैसियत कुछ ही क्यों न हो मगर मां की गोद में खुश रहते हैं। प्रकृति के दृश्य उनके हृदय की खुशी के भावों को विशेष रूप से प्रेरित कर देते हैं। एक फूल मिल गया, उनका हृदय खुशी से उछल पड़ा। एक खिलौना दे दिया गया, वह राजी होगये। नदी के किनारे खेलने आये उसी में अपने आप को भूल गये। उनमें न द्वेष है, न घृणा है, न ईर्षा है न मत्सर है। यही कारण है कि हमारे यहाँ ब्रह्मा के पुत्र सनक, सनन्दन और सन्त कुमार ने ईश्वर से लड़का ही बने रहने की प्रार्थना की थी। उनको हर वस्तु जीवित दिखाई देती है और वह खुश रहते हैं। बूढ़े मनुष्य संसारी बुराइयों की लपेट में आकर बचपन के भावों को खो देते हैं और संसार से उनकी खुशी का सामान सदा के लिये जाता रहता है। उनके पास प्रकृति का दृश्य देखने को आँखें नहीं हैं। उन्होंने उन पर पट्टी बाँधली है। उनको मोतिया बिन्द हो गया है और सिवाय आंतरिक बुराई के उनको कुछ नहीं मिलता। यदि वह मोह माया के जाल में न फंसे होते तो इनमें भी बचपन की खुशी के भाव होते। कारण कि खुशी का संबन्ध आयु से नहीं, किन्तु मनकी विशेष अवस्था से है। खुशी न धन में है न धन की सामिग्री में है। उसको धन और दरिद्रता से कोई सम्बन्ध नहीं है। यह हर व्यक्ति के हाथ आसानी से आ सकती है बशर्ते कि मनुष्य बच्चों जैसा सादा सरल स्वभाव और सादा विचार वाला हो। यह भाव हर व्यक्ति को स्वाभाविक रीति से प्रकृति से मिलते हैं। बहुत से आदमी भूल से यह उत्तराधिकार खो बैठते हैं। कोई-

कोई उनको मरते समय तक अपने से अलग नहीं होने देते और सुखी रहते हैं।

प्रकृति ने बड़ी उदारता के साथ सब को खुश रहने और खुश होने की योग्यता दी है। यदि तुम इससे बंचित रहे तो यह किसी और का नहीं तुम्हारा ही दोष है। यदि किसी ने इसको अपनी संकुचित दृष्टि से खो दिया है तो वह फिर परिश्रम और मन की साधना से फिर प्राप्त की जा सकती है। केवल मन को उधर झुकाने की देर है। वह स्वयं सब को प्राप्त हो जायेगी। सब को चाहिये कि बुरी भली घटनाओं के होते हुये भी खुश रहने की आदत सीखें। आरम्भ में कुछ कठिनाई होगी। कारण कि शिक्षा के प्रारम्भ में सदैव कुछ न कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है परन्तु थोड़े दिन के अभ्यास से आदत पड़ जायगी और वह सरल हो जायगी। जो लोग रात दिन नुक्ता चीनी किया करते हैं और दूसरों के दोष ढूंढ़ने में लगे रहते हैं उनको अपनी आदत बदलने में बड़ी कठिनाई पड़ेगी, परन्तु आशा उनके लिये भी है। किसी को निराश होने की जरूरत नहीं है।

धन की तृष्णा, मानसिक खुशी की इच्छा और अनावश्यक इच्छाओं की बहुलायत यह सब मनुष्य को दुखी बनाने वाले हैं। इसका यह अभिप्राय नहीं कि तुम धन न कमाओ और न यह कहा जाता है कि भोग विलास को बिलकुल त्याग दो। प्रयोजन केवल इतना है कि अधिकता, न्यूनता और समता का ख्याल रक्खो। यदि तुम्हारी आवश्यकता सुगमता से पूरी हो रही है तो फिर अधिक की लालसा क्यों की जाये। स्वास्थ्य और खुशी को आमरण झूठे विचारों की कीचड़ में मत सानो। यह तुम्हारे लिये प्राकृतिक देन हैं और खुशी इनसे

बिलकुल अलग वस्तु है। तुम जिस प्रकार अपने साथ स्वास्थ्य लाते हो वैसे ही खुशी का उत्तराधिकार भी पाते हो। एक व्यक्ति भय के विचार से अधिक शक्तिशाली और लम्बा चौड़ा बनने की फिक्र से दवा खाता है और ताकत देने वाली वस्तुओं का प्रयोग करता है और स्वास्थ्य नष्ट कर लेता है। दूसरा हृदय को ठोकर मार मार कर निरर्थक वस्तुओं को खुशी का कारण समझने लगता है और दुखी हो जाता है। इनसे कहदो कि तुमने भूल की और इस कारण बंचित हो गये मगर जीवन और हृदय को उसकी असली हैसियत देने से यह सम्पति प्राप्त हो सकती है।

खुशी प्राप्त करने की सबसे पहिली विधि यह है कि मनुष्य काम में व्यस्त रहने का जीवन व्यतीत करे और अपने काम को केवल काम की दृष्टि से करे। उसका काम सेवक का काम न हो किन्तु मालिक का काम हो और उस काम में अपने आपको भूल जाया करे जिससे मन की जाग्रित अवस्था का अवसर प्राप्त हो। हृदय की शक्ति केवल काम करने से उभरती है। इसके सिवाय और कोई उपाय नहीं है। जो व्यक्ति कार्य को कर्त्तव्य की दृष्टि से करता है और रात दिन लगा रह कर निःस्वार्थ भाव से कार्य करता है वह कभी दुखी नहीं होता।

दूसरी बात यह है कि हृदय में यह बात समझ ले कि संसार में हर रोग की औषधि है और मनुष्य उसका इलाज कर सकता है। यदि रोग दूर होने की आशा है तो बिना किसी कठिनाई के उसकी ओर लग जाय और चित्त की समस्त वृतियां उसकी ओर लगादे। यदि कहीं यह विचार जम गया कि रोग दूर नहीं हो सकता तो फिर उसका झगड़ा छोड़दे। जो होना है होकर रहेगा और जो होने वाला नहीं है वह कभी न होगा। इस प्रकार के विचार से हृदय शक्ति शाली होगा और

साहस के साथ निडर होकर कार्य में संलग्न हो जायगा।

जीवन में स्वाभाविक रूप से चुलबुला पन है और चुलबुला पन खुशी पैदा करता है। जिसमें खुशी नहीं है वह मृत्यु के मुंह में हैं। उसको जीवन से विमुख समझना चाहिये।

जिन्दगी ज़िन्दा दिली का है नाम।
मुर्दा दिल खाक जिया करते हैं॥

हर व्यक्ति को खुश रहना चाहिये और बेफिक्री से जीवन व्यतीत करना चाहिये। मुर्दा दिली से लाभ ही क्या है। क्या उससे कभी किसी का दुख दूर हुआ है? कदापि नहीं।

तीसरी बात यह है कि वर्तमान दशा में सन्तुष्ट होने की आदत डाले। जो वर्तमान दशा में खुश नहीं रहता उसको चाहे तुम इन्द्रासन पर बिठादो, वह वहाँ भी दुखी रहेगा। राजा प्रजा सब पेट के लिये काम करते हैं। यदि नीच अथवा उच्च प्रकार की सेवा से जीविका प्राप्त होती है तो वही सब कुछ है। शेष सामान इतने जरूरी नहीं हैं। अनावश्यक वस्तुओं के लिये तड़पना यदि मूर्खता नहीं तो और क्या है!

भोग सामिग्री का इच्छुक पेट का कुत्ता है और वह धीरे-धीरे दुख में फंस जाता है।

चौथी बात यह है कि अगर अवसर मिले तो किसी महात्मा के सत्संग में शामिल होकर मन पर काबू करने का भेद सीखले। उनके सत्संग के प्रभाव से उसी प्रकार के भाव स्वयं पैदा होंगे और मनुष्य का स्वभाव बच्चों का जैसा बन जायगा। परमहंस उसीको कहते हैं जिसका स्वभाव बच्चों का जैसा हो।

अभिप्राय यह कि हर व्यक्ति चाहे तो वह इन नियमों का पालन करके खुश रह सकता है। खुशी बाहर की वस्तुओं से नहीं मिलती। यह मन की अवस्था का नाम है और मन से ही

RADHASWAMY DAYAL KI DAYA RADHASWAMY SAHAY PURNADAYAL

सम्बन्ध है। एक बार इसको समझलो, उस पर अमल करो और तुम सुखी रहोगे।

महा लिंग

शैव धर्म वालों में सदैव से लिंग की पूजा की प्रथा है। इसकी पूजा कुछ आज से नहीं है। ईश्वर जाने कब से यह प्रथा चली आती है। हिन्दुओं में तो यह इतनी प्राचीन है कि इतिहास से इसका पता नहीं चलता, परन्तु मिश्र वासी भी जो किसी समय अपनी सभ्यता का डंका बजाते थे वह भी इसकी पूजा करते थे। संसार की और जातियों में भी इसकी थोड़ी बहुत प्रथा पाई जाती है।

पच्छिमी इतिहासकार कहते हैं कि यह धर्म आर्यों का नहीं है किन्तु भारत के असभ्य लोगों में पहिले से मौजूद था। आर्य धर्म वालों ने उनसे सीख कर उसको अपने धर्म का अंग बना लिया। साधारण तया आज कल हिन्दू भी इस विचार का समर्थन करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि वेदों से इसका पता नहीं मिलता परन्तु इससे यह परिणाम निकालना कि इससे संबंध नहीं है गलत बात मालुम होती है। इस नासमझी का कारण यह है कि लिंग शब्द का अर्थ लोगों ने गलत लगाया है और चूंकि उनके समर्थन करने वाले उदाहरण और कहावतें अधिकतर किताबों में मौजूद हैं, इस कारण उनका विचार और पक्का हो गया है। हमारा विचार है और कौन जाने वह सत्य भी है, कि यह कहावतें केवल थोड़े दिनों की हैं और लिंग पूजा इस देश का बहुत पुराना सिद्धान्त है।

संस्कृत में लिंग शब्द का अर्थ वास्तव में वह भी है जिस

मानी में लोग उसको आज कल समझ रहे हैं परन्तु क्या कोश में एक शब्द बहुत से अर्थों में प्रयोग नहीं होता। संस्कृत शब्द अधिकतर बहुत से अर्थ लगाने के लिये प्रयोग किये जाते हैं। जरूरत केवल इस बात की है कि उनका अर्थ वही लगाया जावे जो समय और स्थान के विचार से उपयुक्त हो। उदाहरण के रूप में हरि शब्द विष्णु के लिये प्रयोग किया जाता है परन्तु उसके मानी बन्दर और मेंढक के भी हैं। लिंग शब्द का अर्थ नमक और घोड़ा दोनों हैं। इसी प्रकार और शब्द भी हैं। इस भाषा में प्राय ऐसे शब्द मिलेंगे, जो दो चार, दस बीस और पचास पचास और साठ साठ मानी देते हैं। इसी तरह जहां लिंग शब्द का अर्थ मूत्र की इंद्रिय है वहाँ उसका अर्थ आकार चिन्ह आदि के लिये भी प्रयोग होता है। सत्यता यह है कि शैव सम्प्रदाय की प्रारम्भिक दशा में यह शब्द आवश्यकीत अखण्ड धार के लिये प्रयोग हुआ था और वह उसका 'वाचक है। कैसे दुख और शोक की बात है कि जो शब्द एक विशेष पवित्र उद्देश के प्रकट करने के लिये प्रयोग किया जाता रहा हो उसकी इस प्रकार मिट्टी पलीद की जाय।

लिंग शब्द वास्तव में संस्कृत शब्द 'लिग' से निकला है जिसके कोषीय अर्थ जानना, समझना और ईश्वर के ज्ञान के हैं। यह केवल हमारा अपना ही विचार नहीं है किन्तु श्री कुरम पुराण के ग्यारहवें अध्याय के ६४ वें श्लोक, चौंतीसवें अध्याय के १०२ श्लोक और २६ वें अध्याय के चौथे श्लोक में वह उसी अभिप्राय को प्रकट करता है। फिर अग्नि पुराण के तिरेपनवें अध्याय के तीसरे श्लोक और 'लिंग' पुराण के सेंतालीसवें अध्याय के छटे श्लोक में भी उसका यही अर्थ लिया गया है। अभिप्राय यह कि यह शब्द 'लिंग' परमात्मा की कुदरत के प्रकट करने के लिये उपयुक्त समझा गया है। हिन्दुओं

में यह प्रथा चली आती है कि वह सूक्ष्म विषय को स्थूल रूप में प्रकट करते रहे हैं और उनके आकार बनाकर दिखा देने के इच्छुक रहे हैं। यह केवल हिन्दुओं का ही नहीं किंतु सारे संसार के मनुष्यों का हाल है। सूक्ष्म वस्तु की समझ केवल उन लोगों के लिये संभव है जो बुद्धि के दृष्टिकोण से उन्नति कर गये हैं। साधारण लोगों को उस समय तक समझाना कठिन है जब तक उसका स्थूल रूप बनाकर न दिखाया जावे।

ईश्वर की समझ किसको है! कौन व्यक्ति है जो उसकी मूर्ति बना कर नहीं पूजता! जो व्यक्ति ईश्वर को पिता कहता है वह पिता के रूप में उसको पूजता है। पिता मूर्ति का नाम है जो पूजने वाले के मस्तिष्क में जम जाती है। इसी प्रकार जो ईश्वर को अखंड ज्ञान कहता है वह भी दूसरे तरीके से उसको मूर्तिमान बना रहा है। अन्तर केवल इतना है कि किसी की मूर्ति पत्थर कंकड़ की है किसी की ईंटों की और किसी की विचार की, मगर यह सब मूर्ति ही हैं। पत्थर, शब्द और विचार सब स्थूल चीजें हैं। जिस प्रकार तुम ईश्वर का वर्णन करने की कोशिश करोगे वह कोशिश मूर्ति ही के रूप में आकर ठहरेगी और तब तुमको उसके समझने और समझाने में आसानी होगी, नहीं तो ईश्वर न बाप है न अखंड ज्ञान है न मालिक है। वह क्या है हमारी कल्पना और अनुमान भी वहाँ तक नहीं जा सकता। सबको धर्म की शिक्षा मिली है। सब की बुद्धि और विवेक शक्ति एकसी नहीं है। इस कारण उनका विचार उनका विश्वास, उनकी समझ एक प्रकार की कभी न होगी। हजार कोशिश करो, सदा असफल रहोगे। जब तक मनुष्य मनुष्य है वह मनुष्य की भाषा में बोलने के लिये मजबूर है। यही कारण है कि पुराणों में अलंकारों की सहायता से हर स्थान पर समझाने की कोशिश की गई है।

जिस समय यह पुराण लिखे गये थे वह समय दूसरा था और अब दूसरा समय है। हर चीज बदल गई है। हर काल का साहित्य केवल उस समय के लिये विशेष रूप से होता है। तुम अपने जीवन में देखो। जिस बात को समाज पच्चीस वर्ष पूर्व अच्छा समझती थी आज उसको बुरा समझा जाता है। इस लिये इन पुराणों को यदि उस दृष्टि से देखा जाय जिसके आधार पर वह लिखे गये थे तो उनसे सच्चाई तक पहुँचने में मदद मिलेगी और गलती का भय न रहेगा। हां, जिस जिस अवसर पर जहाँ जहाँ बेजा मिलावट से काम लिया गया है उसका स्वयं पता लग जाता है। उदाहरण के लिये वाल्मीकी रामायण को लेलो। उसका उत्तरकाण्ड बादके समय की मिलावट है। इसको एक संस्कृत जानने वाला बच्चा भी सरलता से समझ सकता है। इसकी भाषा पुस्तक के दूसरे भागों से नहीं मिलती। इसमें छोटे छोटे सर्ग दिये गये हैं। वह खूबी जो दूसरे काण्डों में है उसका इसमें कहीं भी पता नहीं है। इसी प्रकार समय के परिवर्तन से इन पुराणों में भी कहीं कहीं मिलावट हो गई है, और यह तत्वों के समझने वाले साधु व महात्माओं का काम है कि इनको समझें और सत्य को दिखाने की व्यवस्था करें। लिंग शब्द के संबन्ध में भी ऐसी ही भूल हुई है। वह केवल रचना के सिल सिले की धार अथवा आकार का वाचक है। पिछले आने वाले काल में जो कुछ उसके अर्थों में मिलावट की गई वह ना समझ और मूर्खों की समझ का दोष है।

शैवों में महालिंग की पूजा का जैसा रिवाज है वह सब जानते हैं। लिंग को बनाकर एक वेदी पर रखा जाता है, जिसके दो भाग होते हैं। इनमें से एक को ऊर्ध्व पीत और दूसरे को मूलपीत कहते हैं। यह तीनों भाग प्रकृति अथवा

सृष्टि के तीन सिद्धान्तों के प्रगट करने के रूप हैं। इनमें मूल-पीत ब्रह्मा की शक्ति प्रकट करता है, ऊर्ध्व पीत विष्णु है जो विशेष कर पालन पोषण करता है और लिंग संहार कर्त्ता माना गया है अर्थात् उसके कारण उत्पत्ति का क्रम चालू होकर फिर उसी में लय हो जाता है। प्रकृति में कोई वस्तु नष्ट नहीं होती। समुद्र में और समुद्र से लहरें उठती हैं और उसी में मिलकर एक हो जाती हैं। इसकी और विशेष व्याख्या लिंग पुराण में ७५ वें और २० वें और ११ वें अध्याय के ४७ वें श्लोक और मत्स्य पुराण के २६ वें अध्याय के १६ वें श्लोक में मौजूद है और यह सब मिलकर महालिंग कहलाते हैं जिसमें सृष्टि के सारे दृश्य मौजूद रहते हैं।

लिंग अपनी हैसियत से सिर है और महालिंग योगी के सारे शारीरिक अंगों के आकार का स्वरूप है जब वह समाधि की अवस्था में रहता है। जिस प्रकार योगी पद्मआसन पर बैठा हुआ ध्यानावस्था में रहता है वही दशा वास्तव में महालिंग की है और होनी चाहिये। यह आकार अब इस प्रकार नहीं बनाया जाता। समय बदल गया और उसका रिवाज जाता रहा, परन्तु ध्यान से देखने पर अर्घी पूजा करने वालों की मूर्ति में अब भी कुछ कुछ इसका पता मिलता है।

जिस समय योगी कम्बल के आसन पर बैठ कर समाधि में लीन होता है, उसका सिर उठा रहता है। हाथों का भाग वह है जो लिंग के बीच के अंग में थोड़ा दबा देने से दबा हुआ मालूम होता है। इसके नीचे उसकी कमर होती है और यहां से ही वेदी आरम्भ होती है। इससे अभिप्राय यह है कि सृष्टि के पहिले उत्पत्ति के सिद्धान्त की यह सूरत होती है और इसी सूरत में शैवों को उसकी पूजा करनी चाहिये। यह सारी

श्रेणियाँ महा लिंग हैं और उनको सत, रज, तम की साम्य अवस्था की सूरत कहा जा सकता है।

लिंग के ऊपर विभूति की तीन आड़ी लकीरों के तिलक लगाने और उसमें पांच मुँह कायम करने का अभिप्राय केवल तीन गुण और और पांच तत्वों के प्रकट करने का प्रयत्न है और उसमें जो आँख, कान, नाक आदि बनाये जाते हैं उनका अर्थ केवल यह है कि इन्हीं के सामूहिक मेल मिलाप से सृष्टि की रचना में इन्द्रियाँ पैदा होती हैं। इनमें लिंग सिर है और केवल सिर ही से उसका अभिप्राय है। महा भारत के बन पर्व में अर्जुन और शिव में जो वार्तालाप हुई है उसको शान्ति से पढ़ो और भली प्रकार समझ जाओगे कि आया यह केवल बनावटी बात है अथवा इसमें कुछ सत्य भी है।

इन सब बातों पर विचार करने से साफ साफ समझ में आ जाता है कि शैवों के सम्प्रदाय में जो शिक्षा दी जाती है वह केवल सगुन ब्रह्म अथवा माया शील के समझाने की कोशिश है। उपनिषदों में शबल ब्रह्म और शुद्ध ब्रह्म की व्याख्या अधिक मनोहर ढंग से की गई है। शबल ब्रह्म वास्तव में विराट पुरुष से अभिप्राय है और यह महालिंग उसका रूपक है। बात केवल इतनी है इसको बिगाड़कर कुछ का कुछ बना दिया गया है आज कल संसार को इस पवित्र शिक्षा के ढंग की हंसी उड़ाने और ठट्ठा करने का अवसर हाथ आ गया है।

शिव को हर स्थान पर योगी कहा गया है। उन्हीं को ईश्वर बताया जाता है। सांप, बिच्छू, कनखजूरे, भूत पिशाच, बेताल आदि का स्वामी माना गया है, जिनका सिर कहीं और पांव कहीं बनाया जाता है। उन्हीं में विष है उन्हीं में अमृत है। इसका अर्थ केवल यह है कि जीवन की सारी श्रेणियाँ चाहे वह किसी प्रकार की हों, शिव में मौजूद हैं।

शिव का स्थान कैलाश की चोटी है। उनके सिर से गंगा बहती है जो तीन धारों में विभाजित होकर स्वर्ग, अंतरिक्ष और पाताल में जाती है। एक गंगा, दूसरी यमुना और तीसरी सरस्वती है। यह तीन गुण हैं जो ऊपर से नीचे तक विशेषता और न्यूनता के साथ सर्वव्यापी हैं। शिव का लिंग सिर का आकार है आदि आदि।

मंत्रों का प्रभाव

कबीर साहब का कथन है:—

शब्द ही मारे बन गये, शब्द ही तजिया राज।
जो यह शब्द विवेकिया, ताका सरिया काज॥

कहने को शब्द अथवा आवाज साधारण बात है परन्तु वास्तविकता यह है कि शब्द की मार बहुत बुरी होती है। इसकी चोट से मनुष्य घर बार छोड़ कर जंगल चला जाता है और राज्य को लात मार देता है। यदि कोई इस शब्द की वास्तविकता को समझले तो अभी वह अपने जीवन के उद्देश को प्राप्त करले।

तुम देखते हो कि एक आदमी रो रहा है, थोड़े शान्ति-प्रद शब्द तुम्हारे मुख से निकलें कि वह हंसने लगता है। दूसरा रो रहा है, दो चार कठोर शब्द उसको सुना दो। वह या तो बुरा मान कर क्रोधित हो जायगा या रोने लगेगा। क्या इससे तुम यह नहीं समझते कि शब्द में एक विशेष प्रकार की शक्ति है।

मैं तो यहां तक मानने को तैयार हूं कि यदि शब्द से मनुष्य

में नया जीवन आजाता है तो मनुष्य को शब्दमृत्यु के मुंह में भी पहुँचा देता है । यह अमृत है और यही प्राण नाशक विष है । यही पैदा करता है और यही मारता है ।

यहाँ तक तो साधारण मनुष्य भी कुछ अंश तक समझ सकता है परन्तु यदि कोई यह जानले कि कोई अपने अन्तःस्थल के भावों को किसी विशेष स्थान पर एकाग्र करके मुख से शब्द निकाले तो उनका प्रभाव कितना बड़ा होगा । एक बात संसार के सब आदमी कहा करते हैं कि उसका कोई प्रभाव नहीं होता, परन्तु जब वही बात किसी साधन सम्पन्न पुरुष के मुख से निकलती है तो यह बिजली की तेज धार के समान होती है। गौतम बुद्ध ने अपने व्याख्यानों से सारे संसार को हिला दिया और सारा सभ्य संसार उनकी शिक्षा के प्रभाव में आगया। आज उनकी वाणी हर जगह दोहराई जाती है परन्तु उसका कोई प्रभाव नहीं होता, कारण यह है कि वह शब्द उनके हृदय के किसी विशेष स्थान से निकले थे और वह शब्द तीर सिद्ध हुये ।

सतगुरु मारा तान कर, शब्द सुरंगी बान ।
मेरा मारा जोजिये, तो कर नहिं गहूं कमान ॥
सतगुरु पूरा सूरमा, निख सिख मारा पूर ।
बाहर घाव न देखई, भीतर चकना चूर ॥

यह शब्द के प्रयोग का भेद एक विशेष प्रकार की समस्या है जिससे संसार को बहुत कुछ सीखना है। इस शब्द के साथ ही मंत्रों का विषय आता है जो बहुत प्रभाव शाली सिद्ध होते हैं। आजकल के लोग मंत्र जंत्रों के मानने वाले नहीं हैं। उनको व्यर्थ का भ्रम बताया जाता है परन्तु इससे हमको बहस नहीं। जिसकी जैसी समझ वैसा उसका काम। आत्मा के जिस स्थान पर जिसकी बैठक है, उसकी बुद्धि और विवेक शक्ति

उतनी ही होती है। इससे अधिक समझ वह कहां से लाये। उससे लड़ना झगड़ना व्यर्थ है। समय आयगा जब उसकी आंखें खुलेंगी और तब वह मंत्रों के पाठ और उच्चारण को व्यर्थ का भ्रम न कहेगा। जब तक वह उस श्रेणी तक नहीं पहुँचता शान्ति पूर्वक उसकी बुद्धि के शुद्ध होने का इन्तजार करो।

कहा गया है 'ॐ' शब्द है और उसी से त्रिलोकी की रचना हुई है और यह असत्य नहीं है। यदि 'ॐ' न होता तो यह रचना न होती। 'ॐ' बीज मंत्र है। यह सारी सृष्टि का बीज है और जो कुछ तुम संसार में देखते हो यह सब उसी का दृश्य है।

इस बीज मंत्र में ऐसी क्या चीज है जिसके कारण उसकी महिमा का गीत गाया जाता है। सारे वेद मंत्र उसी से आरंभ होते हैं और इसी से समाप्त किये जाते हैं। समस्त तांत्रिक साहित्य के मंत्र 'ॐ' से ही आरम्भ होते हैं। एक अच्छी बात यह है कि बौद्धों में भी जो वेदों के मानने वाले नहीं समझे जाते इस शब्द का प्रयोग हुआ है। तीक्ष्ण बुद्धि के विद्वान 'ॐ' में अ, उ, म के क्रम में जड़, जीव और ईश्वर सब कुछ दिखलाते हुये उसकी बड़ाई का राग गाते हैं। यह सब सच्चे हैं मगर यह 'ॐ' केवल एक आवाज है जो विशेष क्रियाओं में प्रयोग किये जाने पर उपस्थित, सुनने वालों और कहने वालों के हृदयों पर भिन्न भिन्न प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करता है। इसकी व्याख्या दोचार पन्नों में नहीं की जासकती। यह 'ॐ' ही है जो सारी सृष्टि में व्यापक है। यह एक विचार है और शब्द विचार का एक दूसरा रूप है।

जिस समय कोई विशेष शब्द मुंह से निकलता है उसके साथ ही थर थराने वाली लहरें अलवा धारें निकलती हैं और यह लहरें हृदय और मस्तिष्क के सूक्ष्म परदों से टकराती हैं और

उसमें सनसनी पैदा करती हैं। फिर इस सनसनाहट के सिलसिले में तरह तरह के कार्यों के चमत्कार संसार में प्रकट होने लगते हैं। कोई आवाज ऐसी नहीं है जो मनुष्य अथवा पशु के हृदय पर प्रभाव न डालती हो। पशु अथवा मनुष्य तो एक ओर रहे, पत्थर पानी और पृथ्वी पर भी उसका प्रभाव पड़ता है। कारण कि जिभ्या द्वारा शब्द की जो धार निकलती है वह वास्तव में बिजली की शक्ति की तरह स्थूल होती है और वह हर चीज से टकराती है। चाहे तुम उसको जानो या न जानो, समझो या न समझो, वह अपना प्रभाव डाले बिना नहीं रहती। यह प्रभाव मनुष्य के स्थूल शरीर ही तक सीमित नहीं होता, किन्तु वह सूक्ष्म शरीर के पर्दों को बींधता हुआ कारण शरीर तक पहुंचता है। यह साधारण शब्दों का हाल है मगर जहाँ यह शब्द मंत्रों के रूप में किसी विशेष ध्येय को लेकर सुरत (तवज्जह) को हृदय के किसी विशेष स्थान पर एकाग्र करके उच्चारण किये जाते हैं उनकी व्याख्या करने के लिये न तो हमारे पास समय है और न हम लिखने को तत्पर हैं। तुम आसानी से उस पर विचार करके समझ सकते हो। एक अच्छा व्याख्यान दाता जब किसी ध्येय को लेकर व्याख्यान देने खड़ा होता है, उसका व्याख्यान हृदयों को हिला देता है। यदि कोई साधारण मनुष्य उस व्याख्यान को पढ़ दे तो वह प्रभाव न होगा। कारण कि शब्द के उच्चारण का उसको इतना ख्याल नहीं है। इसी प्रकार बांसरी हर मनुष्य बजा सकता है और उसका कोई न कोई परिणाम भी होता है मगर जो आदमी बाँसुरी बजाने की विद्या जानता है उसके बजाने का प्रभाव कुछ और ही होता है। यही बात मंत्रों के पाठ की है।

वेद मंत्रों के लिये आज्ञा है कि वह विशेष ढंग से पढ़े जांय। कारण कि जो इनके पढ़ने का मतलब है वह केवल

उन विशेष तरीकों पर पढ़ने से ही प्राप्त होता है। यदि पाठक संस्कृत ज्ञाता हो तो क्या कहना है। दूसरी दशा में भी यदि उन तरीकों का प्रयोग किया जाय तो किसी अंश तक वह प्रयोजन पूरा हो जाता है क्योंकि मंत्रों के उच्चारण से वायु मंडल में विशेष क्षोभ उत्पन्न होता है और जो लोग इस क्षोभ के प्रभाव में आते हैं उनके हृदय में विशेष विचारों की तरंगें उठने लगती हैं। इन मंत्रों के एक एक अक्षर का प्रभाव अलग अलग है और वह अपना प्रभाव पैदा करने से नहीं चूकते। इसको स्मरण रखो। बिजली, गर्मी, प्रकाश, आवाज, चुम्बकीय शक्ति यह सब शक्तियां लग भग एक ही सी हैं और सब लहरों अथवा धारों के रूप में पैदा होती हैं और विशेष प्रकार के भावों को उभारतीं हैं। मंत्रों को तो अलग रहने दीजिये मैंने अपनी आयु में ऐसे मनुष्य देखे हैं जो कुछ गान विद्या जानते थे। उन्होंने केवल विशेष लहजों में ना, ना, ना, ना करके लोगों को भड़का दिया, रुला दिया और हंसा दिया। यह खेल तुम स्वयं अपने आप करके देख सकते हो। बात केवल इतनी है कि इस ना, ना, ना के परदे में तुम्हारा अपना संकल्प भी छुपा रहता है और वही विशेष प्रकार का प्रभाव उत्पन्न करता है। इस आवाज में जितना घनापन होगा उतनी ही वह अधिक प्रभावशाली होगी। घनी आवाज से गरमी उत्पन्न होती है। घनी गर्मी से प्रकाश उत्पन्न होता है, इसी प्रकार और समझो। तुम किसी पर क्रोध करो। तीक्ष्ण शब्दों और गर्म स्वभाव से काम लो। अभी तुममें गर्मी आजावेगी और उसके प्रभाव से दूसरा भी गर्म हो जायगा। बातों बातों में गर्म स्वभाव के दृश्य हर व्यक्ति ने देखे होंगे। जब यह बात साधारण व्यवहार में देखी जाती है तो मंत्रों के बारे में क्या कहा जावे जो ऋषियों के

मस्तिष्क से निकले हैं और विशेष प्रकार के विचारों को जाग्रित करने को चुने गये हैं। यह मंत्र जहाँ खास तौर पर बोले जाते हैं वह सुनने वालों के हृदय में विचारों की सूरतें पैदा करने लगते हैं और उसके अंग अंग को उभार देते हैं।

आज कल हिन्दुओं में संस्कारों के अवसर पर प्रायः वेद मंत्र पढ़े जाते हैं। बहुत से आदमी तो उसको व्यर्थ समझते हैं। जिनमें थोड़ी भी बुद्धि है वह प्रश्न करने पर यह उत्तर देते हैं कि इन मंत्रों के पढ़ने का उद्देश केवल यह है कि वेद याद रहें परन्तु यदि उनसे यह पूछा जाय कि वेदों के कंठाग्र करने का क्या ध्येय है तो कोई कुछ उचित उत्तर न दे सकेगा और न उनसे ठीक उत्तर की आशा करनी चाहिये। विशेष विशेष अवसरों पर पढ़ने के लिये विशेष विशेष मंत्र हैं। इनका अभि-प्राय यह है कि वह जब उच्चारण किये जांय तो वायु में विशेष प्रकार के विचारों की लहरें पैदा हों और उपस्थित लोगों के हृदय में विशेष प्रकार के भाव उभरें और सब एक विशेष अवस्था का आनन्द प्राप्त कर सकें। पुस्तक हाथ में लेकर पढ़ने से यह अवस्था नहीं होती। कारण कि चित्त की वृति ख्याल में नहीं रहती किंतु पुस्तक में चली जाती है। यह केवल जुबानी तौर पर पढ़ने से सम्भव है और जरूरत इस बात की है कि पढ़ने वाले सुरत, उदात, अनुदात आदि के भेद से परिचित हों जिससे समय समय पर विशेष अक्षरों पर विशेष विशेष प्रकार का जोर देसकें।

वेद मंत्र सबसे अधिक पवित्र हैं, जो उनका विधि के अनुसार अनुष्ठान करता है उसको वैसा फल मिलता है परंतु यह अनुष्ठान द्विजों के लिये ही ठीक है, शूद्रों के लिये नहीं है, जब तक वह पढ़ लिख कर अपने नीच संस्कारों से छुटकारा न पालें।

इनसे अथवा इसी प्रकार के दूसरे मन्त्रों से मनुष्य रोगों का भी इलाज कर सकता है। तांत्रिकों के मंत्र एकाक्षरी होते हैं। उनके उच्चारण से रोगी के हृदय में विशेष प्रकार की लहर उत्पन्न होती है। मंत्र पढ़ने वाले का भाव रहता है कि रोगी अच्छा हो जाय। यह भाव मंत्र को आवाज के साथ जाता है और बड़ा प्रभावशाली सिद्ध होता है। यदि कोई रोगी पीड़ा से कराह रहा है, तुम अचानक उसको कोई खबर सुनादो। वह चौकन्ना हो जायगा और अपना दुख दर्द भूल जायगा। यह तुम देखते हो। इसी प्रकार मंत्रों द्वारा इलाज किया जा सकता है। यहां तुम यह प्रश्न कर सकते हो कि जब स्वास्थ्य का भाव इलाज करने वाले के हृदय से निकलकर रोगी के हृदय में प्रवेश कर सकता है तो फिर मंत्र की जरूरत कहाँ रही। यह काम विचार से भी हो सकता है। मैं कहूँगा कि नही क्योंकि मंत्र के जाप से इलाज करने वाले के भाव स्वयं अधिक क्षोभित होते हैं और वह आसानी से अपना प्रभाव दूसरे में प्रवेश कर सकता है। दूसरी दशा में यह इतना सम्भव नहीं है। सिपाही लड़ने को लड़ते है, लड़ेंगे परन्तु लड़ाई के बाजे यदि बजते रहें तो इनके हृदय में वीरता के विचार की लहरें अधिक जोश पैदा करेंगी और अधिक साहस से कार्य कर सकेंगे।

हिन्दुओं में रोग के समय प्रायः चन्डी अथवा दुर्गा पाठ कराया जाता है। इसका भी यही उद्देश है। इस पाठ के विशेष प्रकार के उच्चारण का रोगी के सूक्ष्म शरीर में विशेष प्रभाव पड़ता है और उसका रोग कम होने लगता है। शायद तुम मेरी बात सुनकर हंस दो, परन्तु हंसी की कोई बात नहीं है। बहुत से रोगी तो केवल विचार को दूसरी ओर फेर देने से ही दूर हो जाते हैं। और उसके दूर करने के लिये प्राचीन मंत्र सिद्धान्त के अनुसार सामग्री की जरूरत नहीं रहती।

वेद मंत्रों में संसार के सारे दुखों के दूर करने का इलाज है बशर्ते कि लोग उनके जानकार हों। स्वार्थ ने वेदों के प्रचार को रोक दिया और यह देश नष्ट हो गया। नहीं तो कौनसी वस्तु है जो वेद नहीं दे सकते। अकाल के समय यदि राष्ट्र वेदों के मंत्र पढ़ने का भेद जान ले और वह मिल बैठ कर गाये तो पानी बरसाया जा सकता है। मनुष्य के सामूहिक विचार की शक्ति वेद मंत्रों द्वारा अकाल की आपत्ति दूर कर सकती है। उपनिषदों में इस प्रकार के प्रमाण संकेत रूप में एक आध जगह आये हैं।

जब यूरुप में हैजा अथवा महामारी का रोग पैदा होता है तो प्रायः लोग संकीर्तन करने को एकत्रित हो जाते हैं और ढोलक बजा बजा कर गाते नाचते हैं। इससे अच्छे विचारों की लहरें उठतीं हैं, वायु शुद्ध आती है और रोग स्वयं दूर होने लगता है। जहां २४ अथवा ३६ घंटे निरन्तर यह कार्य चालू रहे तो वहाँ अवश्य लाभ होता है।

अभिप्रायः यह कि मंत्रों के संबन्ध में अब समय आरहा है कि मनुष्य स्वस्थ बुद्धि से इस पर विचार करें। यह न कहें कि यह वहम है, झूंठा और नीच विचार है। ऐसा नहीं है किंतु इसमें सत्यता है। कितने शोक की बात है कि मनुष्य गंगा के किनारे पड़ा रहे और प्यास से तड़पा करे। इसके संबन्ध में फिर कभी कुछ लिखा जावेगा।

अत्यन्त सच्ची बातें

प्रकृति का सारा कार्य एक विशेष ढंग से होता है। इससे किसी को इंकार न होगा और उस ढंग में सहूलियत, सुरक्षा और

नियमानुकूलता है। इस कारण यदि तुम संसार में रह कर खुशी स्वास्थ्य, धन और स्वतन्त्रता चाहते हो तो सबसे पहले प्रकृति के इस नियम को समझो जो सामूहिक रूप से प्रकृति के प्रबन्ध को चालू रखता है। फिर इस नियम को अपनी हालत से तुलना करके उसको पालन करने का पूरा प्रयत्न करो। फिर तुमको किसी बात की शिकायत न होगी। यह साफ और सच्ची बात है कि यदि संसार में भलाई चाहते हो तो प्रकृति को अपना गुरू बनाओ और तुम्हारा भला होगा!

पहिली आवश्यक बात यह है कि अन्तिम अवस्था के इच्छुक न बनो। अधिकता और न्यूनता में खटका है। समता की हालत अच्छी होती है। अपनी प्रकृति को ऐसा बनालो कि वह प्रकाश और अंधकार के दोनों अंगों को दृष्टि में रक्खे। न बिलकुल प्रकाश की ओर आकर्षित हो और न केवल अंधकार से सम्बन्ध रखता हो। इससे सोच समझ पैदा होगी। पुराण साफ साफ कहते हैं कि ब्रह्मा ने जगत को द्वन्द की दशा बनाया है और यह भी उसी समय तक है जब तक उसमें द्वन्दपना मौजूद है। इस जगह आग और पानी दोनों मिलकर कार्य करते हैं और जो लोग अच्छी और बुरी दोनों दशा के मध्य में चलते हैं जीवन का अधिकार कुछ उन्हीं के हिस्से में आता है। इसका समझना कुछ कठिन है परन्तु बात सच्ची है। संसार में सदैव खुशी के लिये ही पागल न बने रहो। यहां पर दुखों का भी सामना करना होगा। जहाँ सुख है वहां दुख भी है। गुलाब के संग काँटे और शहद के संग डन्स का रहना स्वाभाविक है। यदि तुम सन्तुलन या समता का मार्ग अपनाओगे तो संसार का दुख सुख तुमको दबा न सकेगा। इसको भली प्रकार समझलो।

दूसरी बात यह है कि जहाँ तक हो सके मृत्यु का हृदय में भूलकर भी ख्याल न आने दो। नहीं तो कमजोर हो जाओगे। जो तुमको हर समय मृत्यु की याद दिलाते हैं वह तुम्हारे मित्र नहीं शत्रु हैं। यदि विचार पर ही उन्नति और अवनति निर्भर है तो तुम समझ सकते हो कि मृत्यु का ख्याल तुमको कितनी जल्दी समय से पहिले बूढ़ा बना देगा और दिन प्रतिदिन रोगी और दुखी होते जाओगे। काल अथवा समय की शिकायत व्यर्थ है। समय न किसी को जीवित रखता है और न मारता है मनुष्य स्वयं जीवित रहता है और स्वयं मरता है। जैसा विचार होगा वैसा परिणाम होगा। तुम अपने भावों को कमजोर क्यों बनाते हो। इससे लाभ ही क्या होगा! यदि ज्ञान प्राप्त करना है तो अमर जीवन का विचार हृदय में जमालो। यदि धन चाहते हो तो भी अमर जीवन का ध्यान रक्खो। यदि भक्ति भाव से प्रयोजन है तब भी भूल से भी मृत्यु का स्मरण न करो। मैं तुम से यह भी नहीं कहता कि अमर जीवन का ध्यान बाँध लो। इसको भी जाने दो। कारण कि जहां जीवन का ख्याल होगा वहां मृत्यु का ख्याल छुपा हुआ पड़ा रहेगा। मैं तुमसे केवल इतना कहता हूं कि दृढ़ता (मुस्तैदी) से कार्य करो। दुनिया के मजे लूटो। जो कुछ परमात्मा ने दिया है उसका भोग करो, त्यागी न बनो। प्रकृति में मृत्यु का कहीं भी ख्याल नहीं है। यह केवल आपेक्षिक शब्द है। संसार में हर समय परिवर्तन होता रहता है। वह होता रहे, हमारा क्या बिगड़ता है। यह दूसरी बात है जो तुमको याद रखनी चाहिये।

तीसरी जरूरी बात यह है कि किसी काम में शीघ्रता न करो। संतोष से गहरा सम्बन्ध स्थापित करो। तुमने सुना होगा

कि 'उतावला सो बावला।' सन्तोष एक विशेष गुण है परन्तु यह याद रखो कि संतोष को काहिली और सुस्ती का अर्थ न न लगाओ, नहीं तो फिर कुछ न रहेगा और घृणा की वस्तु बन जायगा और उसकी सूरत कुछ और ही हो जायगी। संतोष का विपरीत असंतोष (बे सबरी) है। पुन्य का विपरीत पाप है। यदि संतोष की अंतिम श्रेणी से सम्बन्ध रखोगे तो पापी बनोगे। संसार में कार्य का क्षेत्र होता है और कार्य के दोनों सिरे गोलाकार के रूप में मिलते हैं। जहां हरकत होती है गोलाकार के रूप में होती है। यदि किसी कार्य में जरूरत से आगे बढ़े तो हानि होगी और मामला उलटा हो जायगा और पुन्य देखते देखते पाप में परिवर्तन होने लगेगा। संतोष और मुस्तैदी एक बात नहीं है। यह तुम भी जानते हो और मैं भी जानता हूँ। किसी किसी समय मनुष्य को तुरन्त सोचने और काम करने की मजबूरी होती है और जरूरत यह होती है कि वहाँ तुम क्षणमात्र में अपने हृदय को प्रेरित करके कार्य करो। ऐसे अवसरों पर केवल परिणाम को देखने को सन्तोष करना पड़ता है। मैं लिख रहा हूँ कारण कि लिखना मेरा कार्य है परंतु मैं इंतजार करके देखूंगा कि तुम्हारे हृदय पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है। इसीको संतोष कहते हैं और बस। यह तीसरी बात है जो तुमको याद रखनी चाहिये।

चौथी जरूरी बात यह है कि जहाँ तुम में संतोष, सच्चा विश्वास और धैर्य हो, वहां तुम परिवर्तन के नियम को भी समझो। चित्त को भक्ति भाव की ओर झुका दो और परिणाम स्वरूप जो अवस्था उत्पन्न हो रही हो उसको अपने अन्तर में जमालो और परिवर्तित हो जाओ। प्रकृति में हर स्थान पर परिवर्तन है। जो अड़ा सो गिरा और जो गिरा सो सड़ा। लोग

स्नान ध्यान पूजा पाठ करते हैं और जीवन भर करते रहते हैं। उनका जीवन परिवर्तित नहीं होता कारण कि वह एक जगह अड़ जाते हैं और यह सब बातें उनकी आदत में दाखिल हो जाती हैं और आदत के गुलामों के लिये न ईश्वर का दर्शन है, न मोक्ष है और न ज्ञान है। यह प्रथा के पुजारी हैं और रस्मी बातों को ही सब कुछ समझते हैं। न स्वयं आगे बढ़े और न औरों को बढ़ाया। मुझे धोती नेती करने वालों पर प्रायः हंसी आती रहती है। इस प्रकार की आदत छोटापन और हृदय की संकीर्णता प्रकट करती है। मैं कहता हूँ और जोर से कहता हूँ कि तुम ध्यान करो, योग का साधन करो, परन्तु परिवर्तन के लिये हर समय तत्पर रहो जिससे साधन का उद्देश पूरा हो जाये। पिछले महापुरुषों के कथन पर घमंड करना ठीक नहीं है। सब के कार्य में त्रुटि होती है। यदि कोई जीवन भर पूजा पाठ करते मर गया तो तुम उसका प्रमाण क्यों देते हो। मैं इसको न मानूंगा। मैं तो परिवर्तन पर मोहित हूँ। नित नई उन्नति के दृश्य देखने का इच्छुक हूँ। आज जहाँ कदम है वह कल आगे पड़े। आज जो बुद्धि और विवेक है कल उसमें बढ़ो-तरी हो। प्रकृति परिवर्तन चाहती है और भलाई इसी में है कि तुम परिवर्तित होते रहो। यह चौथी बात है जो तुमको स्मरण रखनी चाहिये।

पांचवी जरूरी बात यह है कि अपने आपको किसी खास विचार, विश्वास अथवा प्रणाली का गुलाम न बनाओ। विचार, प्रणाली और विश्वास तुम्हारे लिये है, तुम उसके लिये नहीं हो। इसका भी समझ लेना सुगम नहीं है। जिस प्रकार भोजन जीवन के लिये है, जीवन भोजन के लिये नहीं है, उसी प्रकार यह भी हमारे किसी उद्देश की पूर्ति के लिये हैं। हम सदा

उनके अधीन बने के रहने के लिये नहीं हैं। थोड़े दिन इनका अनुभव कर देखो और अनुभव सच्चाई. एकाग्रता और सत भाव से करो। यदि अध्यात्मिक लाभ होता है तो अच्छा है और अगर नहीं है तो छोड़दो। टेक न बाँधो। नहीं तो संड़ा-यद पैदा होगी और जीवन का ध्येय अधूरा रह जायगा।

कबीर साहब कहते हैं।

झूंठे गुरु के पंथ को, तजत न कीजे बार।
द्वार न पावे शब्द का, भटके बारम्बार॥
सांचे गुरु के पक्ष में, मन को दे ठहराय।
चंचल से निश्चल भया, नहिं भरमे आवे जाय॥

यह पांचवीं बात है जो तुमको याद रखनी चाहिये।

छटी जरूरी बात यह है कि स्वभाव में चिड़चिड़े पन की आदत न आये। प्रकृति में कहीं चिड़चिड़ापन नहीं है। इस आदत के जहां और कारण होते हैं वहां एक यह भी है कि मनुष्य किसी एक बात को अपनी टेव (मामूल) बना लेता है। और जहाँ थोड़ा भी उनमें विघ्न पड़ा वह क्रोधित होने लगता है। तुम एक ही विचार को बार बार न जपा करो। जुगाली करना पशुओं का काम है। नित नये विचारों से सम्बन्ध रहे जिससे हृदय की शक्ति योंही नष्ट न होने पावे। जो उन्नति के उच्च मार्ग में पग धरते हैं वह जुगाली नहीं करते और न कोई एक विचार इनको अपना गुलाम बनाता है और न वह चिड़चिड़े होते हैं। यह छटी बात है जो तुमको याद रखनी चाहिये।

सातवीं जरूरी बात यह है कि नित्य कर्म के लिये सदा दृढ़ रहो। इसमें कभी भूल न हो। प्रातः ही उठो, न्हाओ धोओ, संध्या भजन करो और नित्य चित्त एकाग्र करने के साधन से

सम्बन्ध रक्खो। यदि अब तक इस प्रकार का कोई साधन हाथ नहीं आया है तो अब सीखलो। सब से अच्छा प्रभाव शाली साधन सुरत शब्द योग का है। इसकी भिन्न भिन्न श्रेणियां आसानी से आत्मिक परिवर्तन में सहायक होती हैं। क्रियात्मक रूप से इसके सिखाने वाले बहुत नहीं मिलेंगे। इसमें कोई भय डर नहीं है, बूढ़ा, मर्द स्त्री, लड़के सब ही इसको कर सकते हैं। सवेरे शाम खाने से पहिले इस साधन से संबन्ध रखो, जिससे हृदय के भावों को एकाग्र करने का अवसर प्राप्त हो और तुम अपने सब कार्य सफलता पूर्वक करते रहो। यह न समझो कि यह साधन बनावटी है। नहीं, प्रकृति में हर जगह यह प्रकट है और अपना प्रभाव रखता है। इसी को अनहद मार्ग कहते हैं और यह लौकिक और पारलौकिक दोनों प्रकार की उन्नति में सहायक होगा। यह सातवीं बात है जो तुमको याद रखनी चाहिये।

आठवीं जरूरी बात यह है कि काम को नियमानुकूल सहूलियत से करो। कठिन प्रयत्न की आदत छोड़ दो। जो लोग कठिन परिश्रम से काम करते हैं पहले तो उनका काम नहीं होता। दूसरे शरीर के सारे अंग ढीले पड़ जाते हैं और समय से पहिले बूढ़े हो जाते हैं। जो सहूलियत से काम करते हैं उनका काम साल के अखीर में अधिक अच्छा और प्रशंशा के योग्य हो जाता है और उसका कुछ प्रभाव भी होता है। काम करने वाले को बरकत मिलती है और उसके द्वारा दूसरे लोगों को भी बरकतप्राप्त होती है। प्रकृति में कठिन परिश्रम कहीं नहीं है। व्यर्थ और अनावश्यक कामों से सम्बन्ध न रखो। केवल जरूरी और हल्का काम करो। कबीर साहब का कथन है—

जिन जिन पंथों चालना, सोई पंथ संवार।
जन्म मरन दुख यादकर, छोड़े काम निवार॥

यह आठवीं बात है जो तुमको याद रखनी चाहिये।

नवीं जरूरी बात यह है कि नम्रता की आदत डालो। दीनता या नम्रता का मतलब यह न समझो कि किसी की असह्य कठोरता को सहन करो। प्रकृति में विरोध, रुकावट और सुरक्षा का प्रबन्ध है। नम्रता मन को मारने को कहते हैं और इसका अभिप्राय केवल यह है कि मेरा तेरा पना न करो। प्रकृति में मेरा तेरा पना कहीं नहीं है। 'अहं भाव' को अनावश्यक महत्व न दो। यह कड़ा बन्धन है, यही माया है और यही शैतान है। यह हर समय मनुष्य के संग छाया के रूप में पीछे लगा रहता है। इससे बचो। इसके बचने से नवीन अनुभव प्राप्त होंगे। मैं मन मारने को नहीं कहता। केवल मेरे तेरे पने से बचने की शिक्षा देता हूँ। जहाँ तुमने इस नियम को समझ लिया तुम्हारा कार्य बड़ी सुन्दरता से होगा और तुम्हारा हृदय हर प्रकार के भय और डर से बचा रहेगा। यह नवीं बात है जो तुमको याद रखनी चाहिये।

दसवीं बात यह है कि आज का काम कल पर न टालो। जो आज करना है आज ही करो। कल की सुधि कल स्वयं कर लेगा। एक एक दिन एक एक काम के लिये नियत है। प्रकृति में यदि तुम ऋतुओं के परिवर्तन का भेद समझना चाहते हो तो एक दिन उनकी हालत और प्रभाव पर विचार करो। वह दिन प्रति दिन कार्य करती रहती है और हर दिन इसमें परिवर्तन होता रहता है। तब जाकर चार महीने पीछे ऋतु के बदलने का पता लगता है। इसी प्रकार तुम्हारे जीवन में पूरा परिवर्तन एक साथ नहीं होता। तुम्हारा शरीर रोज घटता बढ़ता रहता है। तब जाकर तुम जवान और बढ़े होते हो। यदि प्रकृति आज के काम को कल पर पर टाल दें तो

आपत्ति आ जावे। तुम भी इस भेद को समझ लो। यह दसवीं बात है जो तुमको हृदयांकित कर लेनी चाहिये।

ग्यारहवीं बात जो जरूरी है वह यह है कि सदा कार्य में लगे रहने का जीवन व्यतीत करो। बेकार कभी न रहो। प्रकृति बेकार कभी नहीं रहती। घड़ी की सुइयाँ हर समय टिकटिक करती रहती हैं। इस प्रकार काम में लगे रहने से नवीन और अच्छे विचार अपने हृदय की ओर आकर्षित करते रहोगे और सरलता पूर्वक विचार वान बन जाओगे और आकाश मंडल में जो पुराने संतों और विद्वानों के विचारों की लहरें जोश मार रही हैं, तुम्हारे हृदय को अधिकारी पाकर उसकी ओर झुकेंगी और तुम्हारा जीवन गौरवशाली बन जायगा। यह ग्यारहवीं बात है और तुम को हृदयांकित कर लेनी चाहिये।

बारहवीं जरूरी बात यह है कि तुम्हारा हर काम नियम पूर्वक हो। जहाँ कलम रखनी चाहिये वहां कलम और जहां कागज होना चाहिये वहां कागज हो। प्रकृति में तरतीव या प्रबन्ध का नियम बड़ी सुन्दरता से काम करता है। एक बार ऐसी आदत सीख लो। फिर तुमको परेशानी न होगी। यदि तरतीव के नियम से अनभिज्ञ रहे तो जरूरत के समय और सदैव परेशान रहोगे। यह बारहवीं बात है जो तुमको स्मरण रखनी चाहिये।

तेरहवीं बात जो जरूरी है वह यह है कि प्रकृति के दृश्य और विचित्रता को देखकर हृदय में खुशी, आनन्द और प्रेम उत्पन्न करो और परमात्मा का धन्यवाद देते हुये इन चीजों को अपनी समझो। प्रकृति पुरुष की सम्पत्ति है और इसका अभिप्राय ही यही है कि पुरुष इसके द्वारा भोग और मोक्ष प्राप्त करे। यह तेरहवीं बात है जो तुमको समझ लेनी चाहिये।

यह सारे नियम प्रकृति में मौजूद हैं। कोई कहां तक

उनकी व्याख्या करे। इस समय इतना ही काफी है। यदि जीवन को गौरवशाली बनाना है तो इनको अपने हृदय में स्थान दो और तुम्हारा भला होगा।

केवल अपना अवगुण देखो दूसरों का अवगुण न देखो

सतपुरुष हुजूर राधास्वामी दयाल कहते हैं—'अपने औगुन आप विचारो, और काढन की जुगत कमानी।'

साधारण भाषा में इसका मतलब यह होगा कि अपने दोषों पर आप विचार करो और उनके दूर करने का उपाय सोचो। सवाल हो सकता है कि ऐसा क्यों किया जावे। मैं संक्षेप में इसका उत्तर देने का प्रयास करता हूं:—

प्रथम जो कोई अपने दोषों पर विचार करता है उसको उनकी असलियत का पता लगता है। उनकी बुराइयों को जब वह जान लेता है उसी समय उनकी जड़ स्वयं कमजोर होने लगती है। यह कुछ संसार का प्राकृतिक नियम है। हम उस समय तक भ्रम और धोके में पड़े रहते हैं जब तक हम उनकी असलियत का भेद नहीं जान लेते। जहाँ उसका पता लगा वह आप कमजोर होने लगता है और आसानी से उससे छुटकारा मिल जाता है।

दूसरा—लाभ यह है कि जो अपनी बुराई समझ लेते हैं उनमें सावधानी रखने का संस्कार कुछ ऐसा धीरे धीरे जोर पकड़ता जाता है कि वह उस पर काबू पा लेते हैं।

तीसरा—लाभ यह है कि जो अपने अवगुणों पर आप विचार करते हैं वह दूसरों की बुराई नहीं करते। वह जान जाते हैं कि मनुष्य में कमजोरियां हैं और मांस-मज्जा से

संबन्ध कमजोरी का कारण है और इसी से वह सब के साथ दया और सहानुभूति का व्यौहार करते हैं। वह न किसी की हानि करते हैं और न वह किसी को कष्ट देने के लिये उसके पीछे पड़ते हैं और जिस समय उनका विचार अच्छा हो गया फिर उनके अच्छा बनने में संदेह नहीं रहता।

चौथा—लाभ यह है कि अपने ऐब देखने के कारण जब वह ऐब दूर होने लगते हैं मनुष्य के हृदय का बर्तन खाली होने लगता है। वैसे तो प्रकृति में कोई चीज ऐसी नहीं है जिसको तुम खाली कह सको परन्तु बात यह होती है कि जब दोष पर निगाह पड़ने लगी वह अपनी जगह छोड़ने लगता है और उस जगह को भरने के लिये अच्छे गुण उस ओर दौड़ते हैं और जो व्यक्ति पहिले बुरा था अब अच्छा हो जाता है।

पाँचवा—लाभ यह है कि दोषों को जान लेने से फिर उनके दूर करने का ख्याल स्वयं पैदा होता है और किसी न किसी ढंग से वह निर्दोष होने के प्रयत्न में लग जाता है।

छटवां—लाभ यह है कि अपने अवगुण देखने वाले उस अवगुणी को बढ़ाते नहीं। जो मनुष्य जिसके अवगुण को देखता है वह उस अवगुण का भागीदार बन जाता है। तुम अगर बार बार किसी के दोष ढूंढ़ोगे तो तुम्हारी आदत ऐसी हो जायगी और वह दोष स्वयं तुम में प्रवेश होने लगेंगे और किसी समय तुम स्वयं उस दोष के कारण बदनाम होने लगोगे। यह कायदे की बात है कि जिसको तुम सोचोगे, जो बोलोगे और जो करोगे उसी की सामिग्री से तुम्हारा दिल और दिमाग बनेगा। यदि हृदय अच्छा है तो उसकी तरफ अच्छे विचार आवेंगे और वह स्वर्ग हो जायगा। पाप देखोगे तो पापी बनोगे,

पुन्य देखोगे तो पुन्यात्मा हो जाओगे।

सातवां—लाभ यह है कि अपने दोष देखने से चूंकि उनसे छुटकारा पाने की इच्छा होती है, मनुष्य का हृदय स्वयं ईश्वर की ओर झुकने लगता है। कारण कि ईश्वर नेकी है प्रेम और प्रकाश है और वह सारी भलाइयों का आदर्श है। इस प्रकार कार्य करने से मनुष्य ईश्वर का भक्त हो जाता है और जो लोग उसके प्रभाव में आते हैं उनमें भी ईश्वर की भक्ति पैदा होने लगती है। यह सात लाभ हैं जो अपने अवगुण देखने से प्राप्त होते हैं। दूसरों के दोष देखने से इसी प्रकार की सात हानियां होती हैं, जो इन गुणों के विपरीत हैं। तुम स्वयं सोच समझकर नतीजा निकालो। हम यहाँ उनकी व्याख्या नहीं करना चाहते।

—•:•—